सुमङ्गली

सखे सप्तपदी भव

।। ओ३म् ।।

सुमंगली

(वैदिक विवाह पद्धति)

विवाह संस्कार की विधि एवं व्याख्या
सम्बन्धी एक श्रेष्ठ रचना

•

प्रणेता :
स्व० आचार्य प्रेमभिक्षु

•

सम्पादक :
आचार्य स्वदेश
(सम्पादक : 'तपोभूमि' मासिक, मथुरा)

प्रकाशक :
सत्य प्रकाशन
वृन्दावन मार्ग, मथुरा - ३

■
प्रकाशक :
सत्य प्रकाशन
मथुरा – ३

■
मूल्य :
१५.०० रुपये मात्र

■
चतुर्थ बार :
३००० प्रतियाँ

■
सन् : २०००

■
मुद्रक :
वैदिक प्रेस
मथुरा – ३

ओंकारनाथ आर्य
धर्मरक्षक

ओ३म्

विषय सूची

क्र०	विषय	पृष्ठांक
२०.	वर द्वारा मधुपर्क छींटे व मन्त्र पाठ	२६-३१
२१.	गोदान विधि	३२
२२.	वर द्वारा वस्त्र प्रदान करना	३३-३४
२३.	वस्त्र धारण करना	३५-३६
२४.	वर व कन्या का यज्ञ वेदी पर मन्त्र पाठ	३७-३६
२५.	पुरोहित नियुक्ति व यज्ञ विधि	४०-५७
२६.	वर-वधू द्वारा पाणिग्रहण-मन्त्र पाठ	५८-६२
२७.	शिलारोहण व लाजा होम विधि	६३-६५
२८.	वर द्वारा हस्ताञ्जलि ग्रहण व परिक्रमा	६६-६८
२६.	केश मोचन, सप्तपदी एवं ग्रन्थिबन्धन	६६-७३
३०.	सूर्यावलोकन व हृदय-स्पर्श	७४-७५
३१.	उत्तर विधि	७६-८३
३२.	आशीर्वचन, वामदेव्यगान, स्वस्तिवाचन	८४-६५
	परिशिष्ट विवाह संस्कार	
३३.	वाग्दान (सगाई)	६६-६६
३४.	विवाह पत्रिका (लग्न)	१००-१०१
३५.	घुड़चढ़ी या निकासी	१०२-१०५
३६.	भात लेना-देना आदि	१०५
३७.	गीत तथा बान आदि	१०६
३८.	मिलनी, वर यात्रा, वारौठी	१०७-१०८
३६.	भारतीय विवाह का स्वरूप	110-१११
४०.	दम्पत्ति के कर्त्तव्य	११२-११६
४१.	गीताञ्जलि	११७-१२३
	परिशिष्ट-सामान्य होम विधि	१२४-१४२

गायत्री (गुरु) मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु० ३६।३
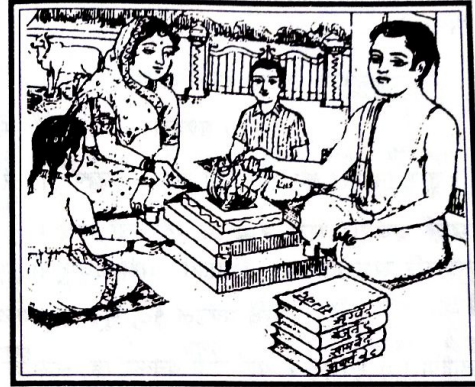
पारिवारिक प्रार्थना

हे दयामय ! आपका, हमको सदा आधार हो ।
आपके भक्तों से ही, भरपूर यह परिवार हो ।।१।।
छोड़ देंगे काम को और क्रोध को, मद-मोह को ।
शुद्ध और निर्मल हमारा सर्वदा व्यवहार हो ।।२।।
प्रेम से मिल-मिल के सारे गीत गायें आपके,
दिल में बहता आपका ही प्रेम-पारावार हो ।।३।।
जय पिता जय-जय पिता जय-जय तुम्हारी गा रहे ।
रात-दिन घर में हमारे आपकी जयकार हो ।।४।।
धन-धान्य घर में जो प्रभो! सब आपका ही है दिया,
उसके हित प्रभु आपका धन्यवाद सौ-सौ बार हो ।।५।।

वेदोपदेश

गृहा मा विभीत–यजु० अ० ३ । मन्त्र ४१ ॥

विवाहित जीवन के पवित्र दायित्व और कर्त्तव्यों से डरो नहीं, उन्हें निष्ठापूर्वक निभाओ ।

मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्

–ऋ० मण्डल १०, सू० ४३, मं० ६॥

मानव ! तू मननशील बन और दैवी प्रजा का उत्पादन कर ।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवाँ भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥

–ऋ० मण्डल १०, सू० ८५, मन्त्र ४६॥

हे कल्याणि ! तू श्वसुर के यहाँ रानी बनकर रह, सास के निकट भी रानी बन कर रह, ननद के साथ रानी जैसा व्यवहार कर । देवरों की भी पूजनीय बन । अर्थात् अपने मधुर व्यवहार और सदाचरण से तू सभी के स्नेह और आदर की पात्र बन ।

अघोर चक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चा ।

–ऋ० मण्डल १०, सू० ८५, मन्त्र ४४ ॥

हे रानी ! तू शान्त दृष्टि वाली एवं पति का शुभ चिन्तन करने वाली होकर आ । पशुओं के लिए कल्याण कारिणी बनकर आ । सुन्दर मन वाली और अच्छी तेजस्विनी बनकर पति-गृह में प्रवेश कर ।

मंगल कामना !

दो अनजान करों ने पकड़ी जीवन-नौका की पतवार ।
प्रभु ! ये हँसते और खेलते हो जावें भव-निधि के पार ।

★ ★ ★

मिल-जुल के पार करलो जीवन की नाव दोनों ।
बनकर सखा बढ़ाओ सत्पथ में पाँव दोनों ॥
जगदीश हों सहायक, चप्पू चलाओ दोनों ।
लहराओ धर्म-ध्वज को ऋषि-ऋण चुकाओ दोनों ॥

★ ★ ★

जाओ, नये सुखों के जग में, साथ सभी का है आशीष ।
फूले-फले तुम्हारा उपवन, रक्षा करें सदा जगदीश ॥
जीवन-पथ के नूतन पंथी, चलो सुखों के जग की ओर ।
यह बन्धन अपने हाथों से, सदा बाँधते आये ईश ॥

★ ★ ★

यह विवाह का ऐसा बन्धन जिसको तोड़ न पाया कोई ।
यह धागा है ऐसा धागा, जिसको मोड़ न पाया कोई ॥
यह नगरी है ऐसी नगरी जिसको छोड़ न पाया कोई ।
इस नाते से पावन नाता, अब तक जोड़ न पाया कोई ॥

सुमंगली वधू

सुमंगलीरियं वधूरिमाँ

समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वा
याथास्तं विपरेतन ।।

—ऋ० मण्डल १०, सू० ८५, मन्त्र ३३

हे विद्वानो ! यह वधू (कन्या) मंगल स्वरूप है, अत: इस वधू के साथ नेह रखो और इसको मंगल दृष्टि से देखो तथा इसके लिए सौभाग्य का आशीर्वाद देकर अपने-अपने गृह के प्रति जाओ (पराङ् मुख होकर न जाओ किन्तु पुत्रादि के मंगल की आशा से फिर भी आने के लिये जाओ ।)

—ऋषि दयानन्द
(संस्कार विधि)

विवाह

पुरुष पर-ब्रह्म का स्वरूप है,
और नारी प्रकृति की प्रतिनिधि,
दोनों ही अपने में महान् हैं,
पर दोनों ही अपने में अपूर्ण ।

यज्ञ-वेदी पर ये दोनों अपूर्णतायें
मिल कर एक पूर्ण हो जाती हैं
उस मिलन का ही नाम है विवाह
यों यह है जीवन की पूर्णता का पर्व !

विवाह संस्कार

नारी गृहस्थ-जीवन की नौका है । प्रेम-पतवार से इस नौका को किनारे लगाना नारी का प्रथम गुण है। पत्नी के रूप में वह पति की सहचरी बनकर उचित परामर्श देती हुई उसे कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ रखती है, और गृहस्थी का सुसंचालन करती हुई राष्ट्र-निर्माण का कार्य प्रशस्त करती है तथा मातृ शक्ति के रूप में दयानन्द और गाँधी सरीखी सन्तान उत्पन्न करके राष्ट्रोत्थान और लोक मंगल का सूत्रपात करती है ।

सप्तपदी शिक्षा सार

विवाह संस्कार की इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधि में गार्हस्थ्य कर्त्तव्य का सुन्दर शिक्षण दिया गया है ।

सर्वप्रथम पति कहता है–

'मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम्'

गार्हस्थ जीवन में हम दक्षिण धर्म-पथ का उल्लंघन नहीं करेंगे ।

१–इषे एक पदी भव–हमारे घर में अन्नादि सामग्री रहेगी । पति अर्जित करे, पत्नी रक्षण करे ।

२–ऊर्जे द्विपदी भव–हम स्वस्थ एवं सबल रहेंगे ।

३–रायस्पोषाय त्रिपदी भव–शुद्ध साधनों से हम खूब धनोपार्जन करेंगे । (अशुद्ध साधनों से नहीं) ।

४–मयोभवाय चतुष्पदी भव–अर्जित धन में से उदारता पूर्वक दान कर पुण्य-भागी बन सुख प्राप्त करेंगे ।

५–प्रजाभ्यः पंचपदी भव–राष्ट्र को हम 'प्रजा' अर्थात् श्रेष्ठ सन्तान देंगे ।

६–ऋतुभ्य षट्पदी भव–हमारा आचार-व्यवहार, खान-पान, वेश-भूषा, भाव-भाषा, देश-कालानुसार होंगे ।

७–सखे सप्तपदी भव–हम परस्पर सखा हैं, मित्र हैं, सहकर्मी और सहधर्मी हैं । वेद पत्नी को सखा बताता है–नारी पैर की जूती नहीं, नरक का दरवाजा नहीं । नारी वैदिक स्वर्ग-गृहस्थ की अधिष्ठात्री देवी है। नारी पुरुष का सबसे बड़ा सम्बल है, उसकी पूर्णता के प्रतिमान हैं ।)

सप्तपदी के सात वचन

पत्नी चाहती है–

१– जो यज्ञ करें उसमें मेरी सम्मति लें ।

२– जो दान करें उसमें मेरी सम्मति लें ।

३– यौवन और बुढ़ापे में–समभाव से रहें ।

४– धन, द्रव्य आदि की रक्षा में भी मेरी सम्मति लें ।

५– गाय, बैल, घोड़ा, हाथी आदि पशु खरीदें या बेचें तो उसमें भी मेरी सम्मति लें ।

६– बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर छहों ऋतुओं में समान सद्भाव रखें ।

७– साथ सहेलियों में मेरी हँसी न करें, न बुरा कहें ।

पति चाहता है–

१– हमारे कुल के धर्म का सदा सम्मान करना ।

२– हमारा जो कुटुम्ब है, अपने कुटुम्ब की तरह ही उसकी सुख-सुविधा का ध्यान रखना ।

३– वृद्धजनों के धर्मानुकूल उपदेश पर सदा ध्यान देना ।

४– यश और सुख की वृद्धि में सदा सहायक होना ।

५– हर काम में तुम्हारा परामर्श मुझे स्वीकार है, पर इसका अर्थ हर बात में तर्क बहस न मानना ।

६– मेरे माता-पिता को अपनी सेवा से सन्तुष्ट रखना ।

७– मेरे मित्र मण्डल और सम्बन्धियों में अपने व्यवहार से सद्भावना का वातावरण बनाये रखना ।

पाणिग्रहण की प्रतिज्ञा
(अनु०-श्री गोविन्द जी झा)

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगोऽर्य्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।।

जीवन के इस पुण्य पर्व में धरता हूँ मैं हाथ ।
रहो सुहागभरी चिर दिन तुम, सुभगे ! मेरे साथ ।।
सुन्दरि ! तुमसे मुझे मिलाया है देवों ने आज ।
तुमको देता हूँ मैं अपने गार्हपत्य का राज ।।

अमोऽहमस्मि मा त्वं मा त्वमस्यमोऽहम् ।
सामाहमस्मि ऋक त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।।

तुम लक्ष्मी हो, मैं तो अब तक था लक्ष्मी से हीन।
सचमुच तुम लक्ष्मी हो, मैं था बिना तुम्हारे दीन ।।
सुभगे ! तुम हो ऋचा सामकी, मैं हूँ स्वर का लास ।
तुम हो सुजला-सुफला धरणी, मैं निर्मल आकाश ।।

तावेह विवहावहै सह रेतो दधावहै ।
प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून् ।।

आओ बाँधें प्राण परस्पर ले विवाह का सूत ।
दें दुनियाँ को मिलित शक्ति से रचकर कई सपूत ।

ते सन्तु जरदष्टयः सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणूयाम शरदः शतम् ।।

हम दोनों सुन्दर छवि लेकर रहें प्रेम में मगन ।
दोनों के मानस हों मंगलमय भावों में मग्न ।।
देखें शत शरदों की शोभा, जियें सुखी सौ वर्ष ।
सुनें कोकिलों के कलरव में सौ बसन्त के हर्ष ।।

-ऋग्वेद ८ । ३ । २७

वर-कन्या से

प्रभु, तेरा पुण्य-प्रताप दुःख हरता है,
सुषमा-समृद्धि, सुख की वर्षा करता है,
जो भक्ति-भाव से तुमको अपनाता है-
वह बड़भागी भव-सागर तर जाता है।
हे परम प्रभो ! शुभ समय दिखाया है यह,
तेरी करुणा से अवसर आया है यह,
उठ रहीं हर्ष की लहरें मन-मानस में-
सब इष्ट-मित्र पग रहे प्रेम के रस में ।।१।।
वैदिक विधि से व्रत धार वचन में-मन में,
बँध रहे आज दो व्यक्ति धर्म-बन्धन में,
हे यज्ञ देव ! तेजस्वी इन्हें बनाना-
सद्ज्योति जगाकर, शुभ सन्मार्ग सुझाना ।
नव दम्पति ! स्वागत है गृहस्थ में तेरा,
हो सुख-समृद्धि-सम्पन्न विनय-नय प्रेरा,
बन गृही सदा सद्धर्म निभाना होगा-
कर दान-पुण्य नित सुयश कमाना होगा ।।२।।
ऋषि-मुनि, विवेकियों का वचनामृत पीना,
तुम सदा सत्य-रक्षा हित जीवन जीना,
जो वेद ज्ञान मानव का सुदृढ़ सहारा-
हो वह तुम दोनों को प्राणों से प्यारा ।
सद् साधन से हो धर्म कमाई धन की,
यम-नियम युक्त हो चाह उच्च जीवन की,
बन देश-भक्त वर वीर भाव बरसाना-
कर्त्तव्य कर्म से पीठ न कभी दिखाना ।।३।।

जिस गृह-कुटुम्ब में नारि सुखी रहती है,
उसमें सदैव सुख की सरिता बहती है,
जो पत्नी को विलास वस्तु बताते-
वे भव्य भावना का अस्तित्त्व मिटाते ।
है 'मित्र', 'सहायक' अर्द्धांगिनी, तुम्हारी,
तुम प्राणनाथ हो, वह प्राणों की प्यारी,
व्रत-दान-यज्ञ दोनों मिल-जुल कर करना-
कर्त्तव्य-क्षेत्र में, बन निर्भीक विचरना ।।४।।
हे सुते ! तुम्हारा, शुभ सौभाग्य अचल हो,
जब तक गंगा-यमुना में बहता जल हो,
तुम हो गृहस्थ की ज्योति स्वधर्म निभाना-
अति भक्ति-भाव से प्रिय पति को अपनाना,
जब 'पतिव्रता-व्रत' में बाधा आती है,
तब अबला सती सिंहनी बन जाती है,
प्रिय पुत्री, तुम यह मन्त्र भूल मत जाना-
सर्वस्व होमकर भी कुल-कानि बचाना ।।५।।
तुम घर गृहस्थ को स्वर्ग समान बनाना,
हो अति प्रसन्न-सन्तुष्ट सुनीति निभाना,
आदर्श सती सीता को भूल न जाना-
प्राचीन आर्य गौरव के गुण को गाना,
बनकर चिरायु भोगो सुख वरना-वरनी,
हो सदा सुयश-सम्पन्न धर्ममय करणी,
तुम अचल भाव से नित सत्पथ पर चलना
दूधों नहाना पूतों से दोनों फलना ।।६।।

दिव्यदृष्टा, जगद्‌गुरु महर्षि-

दयानन्द उवाच

गृहस्थ के कर्त्तव्य

(सत्यार्थ प्रकाश से उद्‌धृत)

१-स्वध्याय-गृहस्थ अपने अवकाश के समय जो बुद्धि, धन और हित की शीघ्र वृद्धि करने वाले शास्त्र और वेद हैं उनको नित्य सुनें और सुनावे ।

२-पंचयज्ञ-ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ तथा भूतयज्ञ-इन पाँचों यज्ञों को अवश्य करें ।

३-प्रातः जागरण-रात्रि के चौथे प्रहर में उठ बैठें । आवश्यक कार्य करके धर्म-अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करें ।

४-धर्म संचय-गृहस्थ पुरुषों को चाहिए कि जैसे दीमक बाँबी को बनाती है, वैसे सब भूतों को पीड़ा न देकर परजन्म के सुखार्थ धीरे-धीरे धर्म का संचय करें ।

५-परस्पर व्यवहार-जो एक दूसरे के अधीन काम हैं, वह अधीनता से ही करने चाहिए । स्त्री-पुरुष और पुरुष-स्त्री का परस्पर प्रियाचरण, अनुकूल रहें, विरोध कभी भी न करें ।

● भगवान के बाद दूसरा स्थान माता का है ।

-साने गुरुजी

● स्त्री को अबला कहना अन्याय है । वह शक्ति का अवतार है।

-महात्मा गाँधी

मानव धर्म-शास्त्र प्रणेता
महर्षि मनु उवाच

यथा वायुं समाश्रित्य
वर्तन्ते सर्व जन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य
वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥
(मनु० ३ । ७७)

भावार्थ–जैसे वायु के आश्रय से, सब जीवों का वर्तमान सिद्ध होता है, वैसे ही गृहस्थ के आश्रय से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात् सभी आश्रमों का निर्वाह होता है ।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफला क्रिया ॥

भावार्थ–जिन परिवारों में नारी सम्मान होता है, वहाँ दिव्यात्मायें निवास करती हैं । जहाँ स्त्रियों का समादर नहीं होता है, वहाँ सभी यज्ञादिक शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं ।

- पातिव्रत्य ही स्त्रियों का सर्वोत्तम आभूषण है ।
  – महर्षि बाल्मीकि
- केवल माँ की कृपा से मैं इतना यश पा सका ।
  – जार्ज बर्नाड शा

स्वर्ण-सूत्र

- यदि पुरुष अपनी पत्नी से सच्चा प्रेम नहीं करता तो वह उसका स्वामी भले ही बना रहे, पर उसका हृदय-सम्राट् नहीं बन सकता ।
- विवाह ब्रह्मचर्य और मोक्ष में बाधक नहीं, साधक संस्कार है । यही उसका सच्चा मूल्य है ।
- विवाह से मनुष्य का जीवन नये सिरे से शुरू होता है । यहाँ दो साथी मिलकर एक हो जाते हैं और अपने सन्तुलन एवं संयम द्वारा मानवता की साधना में पूर्ण रूप से तत्पर होते हैं । दाम्पत्य के भाव में विश्व का व्यापक रूप निहित है ।
- विवाह एक सामाजिक बन्धन है । यह दो व्यक्तियों को नहीं, दो परिवारों को भी नहीं, दो समाजों को बाँधता है । इतना ही नहीं, यह समूची मनुष्यता के लिये आशा का सन्देश लाता है । यह वह फूल है जिसमें सारे देश को कल्याण मार्ग पर ले जाने वाले फल के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है ।
- विवाह से मनुष्य का नया जन्म होता है । हमारे धर्म शास्त्रों में इसे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना कहा है । जीवन में मेल-जोल एवं संगठन की भावना का प्रारम्भ यहीं से होता है । जो मनुष्य दो के मेल-जोल एवं संगठन में सफल नहीं हो सकता, वह संसार के किसी भी सार्वजनिक कार्य में सफल नहीं हो सकता ।
- मानव जीवन में विवाह एक संस्कार ही नहीं, चमत्कार है । वह मानव जीवन को एक नया दृष्टिकोण, एक नया मानस-पट और एक नई जागृति प्रदान करता है । यह मानव को संयम के द्वार पर लाता है । प्रेम की नैया को वह कर्त्तव्य के पतवार से खेना सिखाता है ।

पुरोहित वरण संकल्प विधि

ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वंतरेऽष्ट विंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुक[1] सृष्टिसंवत्सरे अमुक श्रीमन्महाराज विक्रमादित्यस्य राज्यतोगताब्दे अमुक श्री मद्दयानन्दर्षेर्जन्मतो गताब्दे अमुक अयन अमुक ऋतु अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक नक्षत्रे अमुक लग्न मुहूर्ते च अत्र जम्बू द्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्त्तान्तर्गते अमुक प्रदेशे अमुक नगरे अमुक गोत्रोत्पन्नोहं शीलगुण सम्पन्नाया: आत्मजाया अमुक देवाय: पाणिग्रहण संस्कार कारयिन्तुं पण्डित वरं भवन्तं वृणे ।

कन्यादान संकल्प विधि

ओ३म् तत् सदद्य .... अमुक संवत्सरे .... अमुक .... मासे .... अमुक पक्षे .... अमुक तिथौ .... अमुक गोत्रस्य श्रीमत: .... पौत्रीम् .... अमुक-गोत्रस्य श्रीमत: .... अमुक नाम्न: पुत्रीं इमाँ .... अमुक नाम्नीम् अलंकृताँ कन्याम् .... अमुक गोत्रस्य श्रीमत: .... अमुक नाम्न: प्रपौत्राय .... अमुक गोत्रस्य .... अमुक गोत्रस्य श्रीमत: .... अमुक नाम्न: पुत्राय भार्या रूपेण सम्प्रददे ।

---

१. 'अमुक' इस पद के स्थान पर सर्वत्र यथा योग्य बोलना चाहिए ।

प्रथम संस्करण की भूमिका

ऋषि दयानन्द के आर्य जाति और अखिल मानव प्रजा पर अनन्त उपकार हैं । मानव-निर्माण की आधारशिला–वैदिक संस्कारों की शुद्ध पद्धति का पुन: प्रचलन भी उनकी एक महतोमहान् देन है । इसके लिये उन्होंने गृह्यसूत्रों एवं मनुस्मृत्यादि स्मृतियों से समर्थित तथा वेद विहित १६ संस्कारों से युक्त 'संस्कार-विधि' का निर्माण किया ।

महर्षि को अल्प समय में जो परम पुरुषार्थ करना पड़ा उसके बीच प्रत्येक विधि का विशद् व्याख्या का अवकाश ही कहाँ था । यह कार्य वैदिक मूर्धन्य स्व० पं० भीमसेन जी शर्मा एवं राज्यरत्न मा० आत्माराम जी अमृतसरी ने संस्कार चन्द्रिका के रूप में सम्पन्न किया । श्रद्धेय डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री ने इस ग्रन्थ रत्न को और भी परिमार्जित किया जो 'अभिनव संस्कार-चन्द्रिका' के नाम से दो भागों में हमारे द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ । प्रस्तुत 'वैदिक-विवाह-पद्धति' द्वितीय भाग का एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण है ।

इस पद्धति में अनावश्यक रीतियों का निराकरण करते हुए परिशिष्ट (१) के अन्तर्गत आवश्यक एवं उपयोगी लोक-रीतियों का शुद्ध स्वरूप और उनकी विधि दी गई है । साथ ही मुख्य संस्कार की प्रत्येक विधि का विशद् विवेचन एवं महत्व प्रदर्शित किया गया है । अन्त में विवाह अवसर पर गाने योग्य कुछ गीतों को भी दिया गया है । वैदिक विवाह पद्धति सम्बन्धी इस प्रकार की सर्वांगीण पुस्तक का अभाव अनेकों अवसरों पर बड़ा खटकता था। मेरी भतीजी सौ० स्नेहलता के विवाह-संस्कार के लिये अपने पूज्यपाद पिताजी ला० पुरुषोत्तमदास जी की सत्प्रेरणा से इसका सम्पादन हुआ और अपने सद्गुरु श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की प्रेरणा से सर्व साधारण के लाभार्थ इसको 'स्वाध्याय ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया ।

हमारे सम्पूर्ण जीवन की मंगलमयता बहुत कुछ इस संस्कार के सविधि निष्पादन और उससे भी अधिक इसके पावित्र्य को जीवन में धारण करने पर निर्भर है । इसीलिए मेरे भावना-प्रवण मानस को इसका 'सुमंगली' नाम अधिक रुचिकर लगा । आशा है भारतीय जनता और मानव मात्र का इससे कुछ हित साधन हो सकेगा ।

–ईश्वरीप्रसाद 'प्रेम'

विधि भाग

जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाये तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उस रात्रि से तीन दिन पूर्व विवाह करने के लिए प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिए और यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य, सब सामग्री शुद्ध करके रखनी उचित है ।

समय–विवाह संस्कार आरम्भ के दो ही समय ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि में लिखे हैं–(१) एक घण्टा मात्र रात्रि[1] जाने पर और (२) मध्याह्नोत्तर ।

स्नान-विधि–उक्त समय से कुछ पूर्व निम्न मन्त्रों को बोलकर तथा उनका आशय समझ, वर-वधू स्वगृह (वधू पितृ गृह तथा वर ठहरने के स्थान पर) स्नान करे ।

ओ३म् काम वेद ते नाम मदो नामासि समानयामुँ सुरा ते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥

–सा० मं० ब्रा० प्र० १ । ख० १ । मं० २ ॥

अर्थ–हे (काम) काम ! (ते, नाम) तेरे नाम को (वेद) सब जगत् जानता है (मद, नाम, असि) मदकारी तू प्रसिद्ध है । (ते) तेरे लिये यह कन्या (सुरा) मद-साधन (अभवत्) हो चुकी है अथवा (सुरा) यह जल, तेरे शान्त्यर्थ उपस्थित है (सुरा जल का नाम भी है) (अमुम्) इस कन्या को वा इस मद को वा इस पति को (समानय) मानसहित कर । हे (अग्ने)

---

१. यदि आधी रात तक विधि पूरी न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिससे मध्यरात्रि तक विवाह विधि पूरी हो जाये । (दोनों विधि–पूर्व विधि एवं उत्तर विधि ठीक प्रकार सुविधा से समयानुसार सम्पन्न हो सकें, इसके लिए मध्याह्नोत्तर से ही आरम्भ करना चाहिए ।

कामाग्ने ! (अत्र) इस स्त्री जाति में ही तेरा (परं जन्म) उत्कृष्ट जन्म है (तपसः) गृहस्थाश्रम पालन रूप उत्कृष्ट धर्म के लिये तू (निर्मितः) ईश्वर ने बनाया (असि) है ।

ओ३म् इमं त उपस्थं मधुना संसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम् । तेन पुंसोभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञी स्वाहा ॥

–सा० मं० ब्रा० प्र० १। ख० १। मं० २

अर्थ–हे वधू ! (इमं, ते, उपस्थम्) इस तेरे आनन्दजनक इन्द्रिय को (मधुना) प्रेम से (सं सृजामि) संसृष्ट करता हूँ (एतत्) यह (प्रजापतेः) गृहस्थी बनाने का (द्वितीयं, मुखम्) द्वितीय द्वार है । (तेन) उससे ही (अवशान्) नहीं किसी के वश में होने वाले भी (सर्वान्पुंसः) सब पुरुषों को (अभि, भवासि) वशीभूत कर लेती है और (वशिनी) वश करने वाली तू (राज्ञी) घर की स्वामिनी (असि) है ।

ओ३म् अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृण्वं स्त्रै शृंगं त्वाष्ट्र त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥

–सा० मं० ब्रा० प्र० १। ख० १। मं० ३॥

अर्थ–(गुहानाः) तत्वदर्शी (पुराणाः) पुराने (ऋषयः) ऋषि लोगों ने (स्त्रीणाम्) स्त्री जाति के (उपस्थम्) आनन्दजनक इन्द्रिय को (क्रव्याद्) माँस खाने वाला (अग्निम्) अग्नि जैसा (अकृण्वन्) स्वीकार किया है । (तेन) उसके साथ (स्त्रैशृंगम्) पुरुष-शिश्न से उत्पन्न (त्वाष्ट्रम्) उत्पादक शक्ति वाले वीर्य को (आज्यम्) घृत–घी जैसा (अकृण्वन्) स्वीकार किया है । हे वधू ! (त्वयि) तेरे में (तत्) वह शुक्र (दधातु) पुष्ट हो ॥

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेकर वधू-वर स्नान करें ।●

वस्त्रालंकार धारण करना, होम करना, बारात ले जाना

पश्चात् वधू, (अपने स्थान पर) उत्तम वस्त्रालंकार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठें, और ईश्वर स्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण आदि करें । तत्पश्चात् आग्न्याधान्, समिदाधान, स्थाली पाक आदि यथोक्त कर वेदी के समीप रखें (और दैनिक यज्ञ विधि सम्पन्न करें) इसी प्रकार वर भी अपने स्थान पर (जहाँ वह ठहरा हो) स्नान कर उत्तम वस्त्रालंकार धारण कर उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे तथा (अन्य साथ में आये महानुभावों सहित) यज्ञ कर फिर वधू के घर जाने का ढंग करे । तत्पश्चात् कन्या और वरपक्ष के पुरुष बड़े मान से वर को घर ले जावें ।+

संस्कार विधि

जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करे, उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार से आदर सत्कार करे । उसकी रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख

● स्नानविधि, गोभि० गृ० सू० प्र० ०। का० १। सू० ६० के अनुसार है। विशेष वहीं द्रष्टव्य है ।

+ यहाँ से आगे समस्त विवाह की पूर्व विधि, विशेषः पार० ग० सू० का० ६। क० ३ सू० ४ आदि के अनुसार हैं, इससे सब स्थलों में सूत्रादि लिखने की आवश्यकता नहीं ।

खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रहकर निम्न वाक्य बोलें–

कन्या तथा कन्या के माता-पिता द्वारा वर का सत्कार

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ।

अर्थ–(भवान्) आप (साधु) अच्छे प्रकार (आस्ताम्) बैठिये (भवन्तम्) आपका, हम सब (अर्चयिष्याम:) पूजन–सत्कार करेंगे ।

भावार्थ–हम आपके स्वागतार्थ प्रस्तुत है, कृपया, आइये, विराजिये । (यहाँ वर-वधू परस्पर पुष्पमाला पहिनावें-लोकाचार)

तत्पश्चात् वर–

ओ३म् अर्चय ॥

अर्थ–(धन्यवाद !) सत्कार कीजिये ।

–ऐसा प्रत्युत्तर देवें । पुन: जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिए उत्तम आसन सिद्ध (तैयार) कर रखा हो उसको वधू हाथ में लेकर वर के आगे खड़ी रहे ।

आसन से सत्कार

ओ३म् विष्टरो-विष्टरो विष्टर:• प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थ–(विष्टर:) यह आसन है (प्रतिगृह्यताम्) कृपया, आप इसे ग्रहण कीजिये, पश्चात् वर–

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ॥

अर्थ–(धन्यवाद !) स्वीकार करता हूँ ।

● आदरार्थ तीन बार कथन है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये ।

इस वाक्य को बोलकर वधू के हाथ से आसन ले, बिछा दें । उस पर सभा मण्डप में पूर्वाभिमुख बैठ कर वर निम्न मन्त्र को बोले–

(वर) **ओ३म् वर्ष्मोऽस्मि समानामुद्यतामिव सूर्य: ।**
इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥

अर्थ–(उद्यताम्) प्रकाश करने वाले इन नक्षत्रादिकों के बीच में (सूर्य: इव) सूर्य जैसे श्रेष्ठ हैं-वैसे ही (समानानाम्) कुल, ज्ञान, आचार, शरीर अवस्था तथा अन्य गुणों से सजातीय तुल्य पुरुषों में मैं (वर्ष्म:) श्रेष्ठ (अस्मि) हूँ । (य:, क:, च) और जो कोई (मा) मुझे (अभि, दासति) उपक्षीण करना चाहता है अर्थात् मुझे नीचा दिखाना चाहता है (तम्) उस पुरुष को लक्ष्य बनाकर (इमम्) इस आसन के (अभि) ऊपर (तिष्ठामि) बैठता हूँ अर्थात् उसे इस आसन के तुल्य नीचा करके बैठता हूँ । (यहाँ वर आत्म-गौरव का अनुभव करता हुआ अपने को इस आसन का अधिकारी बता रहा है ।)

पैर धोने के लिये जल से सत्कार

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर कर कन्या के हाथ में देवे और कन्या–

ओ३म् पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ।

अर्थ–(पाद्यम्) यह पैर धोने के लिए जल है (प्रतिगृह्यताम्) कृपया, आप इसे स्वीकार कीजिये ।

इस वाक्य को बोलकर वर के आगे रखे, पुन: वर–

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।

अर्थ–(धन्यवाद !) स्वीकार करता हूँ ।

इस वाक्य को बोलकर कन्या के हाथ से उदकं (जल) ले, पग[1] प्रक्षालन करे और उस समय वर इस निम्न मन्त्र को बोले–

(२१) **ओ३म् विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ।**

अर्थ–हे जल ! तू (विराजः) विविध प्रकार से शोभित होने वाले अन्न का (दोहः) सारभूत रस (असि) है । (विराजो दोहम्) उस अन्न के सारभूत तुझको मैं (अशीय) व्याप्त होऊँ अर्थात् तुझको रोगादि-निवृत्ति के लिए ईश्वर करे कि सम्बन्ध करूँ (विराजः दोहः) अन्न का सार तू यह उपस्थित है ।

अर्घ जल से मुख धोने का सत्कार

ओ३म् अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ।

अर्थ–(अर्घः) आपके सत्कारार्थ–मुख-प्रक्षालनार्थ यह जल प्रस्तुत है (प्रतिगृह्यताम्) कृपया, इसे स्वीकार कीजिये ।

इस वाक्य को बोलकर वर के हाथ में दें और वर–

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।

अर्थ–(धन्यवाद !) स्वीकार है ।

इस वाक्य को बोलकर कन्या के हाथ से जलपात्र लेकर उससे मुख-प्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोकर निम्न मन्त्रों को बोले–

१. यदि ब्राह्मण वर्ण हो तो प्रथम दक्षिण पग पश्चात् बाँया और अन्य क्षत्रियादि वर्ण हो तो प्रथम बाँया पग धोवें उसके बाद दाहिना । (पार० गृ० सू० क० ३। सू० ११)

(२२) **ओ३म् आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामा नवाप्नवानि ।**
ओ३म् समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत ।
अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥

अर्थ–हे जलो ! तुम (आपः) आप्ति–नैरोग्यलाभादि के हेतु (स्थ) हो । (युष्माभिः) तुमसे (सर्वान्, कामान्) सब आरोग्यतारूप मनोरथों की (अव, आप्नवानि) प्राप्ति करूँ । अर्थात् जल से सब शरीर के विकारों को दूर करूँ जिससे स्वस्थता की उपलब्धि हो । हे जलो ! (वः) तुमको मैं (समुद्रम्) अन्तरिक्षलोक में (प्र हिणोमि) भेजता हूँ– पहुँचाता हूँ अर्थात् छोड़ता हूँ, इससे तुम (स्वाम् योनिम्) अपने कारणीभूत जल के (अभि) सम्मुख (गच्छत) जाओ । (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर लोग (अरिष्टाः) रोग रहित–दुःख रहित हों । (मत्) मुझसे (पयः) मंगल जल ईश्वर करे कि (मा, परासेचि) न हटे अर्थात् मैं सर्वदा पूजनीय बना रहूँ । मैं जल से काम लेकर उसे छोड़ता हूँ जिससे वह अपने कारण स्वरूप को प्राप्त होकर फिर अन्य वीरादि का उपकारण हो । इन मंत्रों में जल को एक उत्तम औषधि बताते हुए जल के गुणों की प्रशंसा है । (प्राकृतिक चिकित्सा का महत्त्व भी यहाँ द्रष्टव्य है ।)

आचमन के लिये जल द्वारा सत्कार

तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वर बैठे, फिर कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उसमें आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या–

ओ३म् आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थ–(आचमनीयम्)–मान्यवर ! यह पीने योग्य शुद्ध जल है । (प्रतिगृह्यताम्) कृपया, आप इसे ग्रहण कर हमें कृतार्थ कीजिये ।

इस वाक्य को बोलकर वर के सामने करे और वर–

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।

अर्थ–(सधन्यवाद) स्वीकार करता हूँ ।

इस वाक्य को बोलकर कन्या के हाथ में से जलपात्र को लेकर सामने रखें। उसमें दाहिने हाथ में जल, जितना अँगुलियों के मूल तक पहुँचे उतना लेकर, वर निम्न मन्त्र से एक आचमन, इसी प्रकार, इसी मन्त्र को पढ़कर दूसरा और (फिर इसी मन्त्र को पढ़कर) तीसरा आचमन करे ।

ओ३म् मा माऽगन् यशसा संसृज वर्चसा ।
तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ।।

अर्थ–हे जलेश्वर, परमात्मन् ! आप (मा) मुझे (यशसा) उत्तम यश के साथ (आ, अगन्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ और (तम्) आपका आश्रयण करने वाले मुझको (वर्चसा) अपने तेज से (संसृज) युक्त करो और (प्रजानाम्) प्रजाओं–पुत्र पौत्रादि का (प्रियम्) प्रेमपात्र (कुरु) करो (पशूनाम्) गवादि पशुओं का (अधिपतिम्) स्वामी बनाओ और जल आदि से (तनूनाम) शरीरावयवों का (अरिष्टिम्) अहिंसक–पीड़ा न देने वाला करो । (मन्त्र में जलेश्वर प्रभु से विनय की गई है ।)

मधुपर्क से सत्कार

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क[1] का पात्र कन्या के हाथ में दें और कन्या–

1. मधुपर्क उनको कहते हैं जो दही में घी और शहद मिलाया जाता है उसका प्रमाण बारह तोले दही में चार तोले शहद अथवा चार तोले घी मिलाना चाहिये तथा मधुपर्क काँसे के पात्र में होना उचित है । (दही में शहद ही अधिक उपयुक्त रहेगा। काँसे के पात्र से ऋषि दयानन्द का उद्देश्य मधुपर्क के खराब न होने का प्रतीत होता है । अतः इस दृष्टि से मधुपर्क स्टील के पात्र में भी हो तो कोई हानि नहीं। सम्पा०

ओ३म् मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ।

अर्थ–यह मधुपर्क है, कृपया ग्रहण कीजिये ।

ऐसी विनती वर से करे और वर निम्नलिखित सम्पूर्ण विधि को करे–

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।

अर्थ–(धन्यवाद !) स्वीकार करता हूँ ।

वर इस वाक्य को बोलकर कन्या के हाथ से (दक्षिण हाथ में) पात्र को लें और निम्न मन्त्रांश को बोलकर मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखें–

ओ३म् मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ।

अर्थ–(त्वा) तुझे (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (प्रति ईक्षे) देखता हूँ ।

पश्चात् निम्न मन्त्र को बोलकर मधुपर्क-पात्र को वाम हाथ में लेवें ।

ओ३म् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् प्रतिगृह्णामि ।

–यजु० अ० १। मन्त्र १०।।

अर्थ–परमात्मा के ऐश्वर्य के लिए तुझे ग्रहण करता हूँ । सूर्य और चन्द्रमा के जैसे परोपकारार्थ बल और पुरुषार्थ के लिए तथा प्राणादि-वायु के ग्रहण और त्याग के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ ।

पश्चात् निम्नलिखित तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करें–

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । मधु वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ।।१।।

—यतु० अ० १३। मं० २७।।

अर्थ—हे परमात्मन् ! (ऋतायते) यज्ञ की इच्छा करने वाले पुरुष के लिए (वाताः) वायु (मधु) सरस नीरोग होकर बहें। (सिन्धवः) नदियाँ (मधु) सरस जल को (क्षरन्ति) (छान्दसत्वात्पुरुषव्यत्ययः) देवें। (नः) हमारे लिए (औषधीः) रोग नष्ट करने वाली औषधियाँ (माध्वीः) माधुर्ययुक्त (सन्तु) हों ।।१।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ।।२।।

—यजु० अ० १३। म० २८।।

अर्थ—(नक्तम्) रात्रि (मधु) निर्विघ्न व्यतीत हों (उत) और (उषसः) प्रभात काल की वेलायें भी निरुपद्रव हों। (पार्थिव, रजः) यह पार्थिवलोक, जोकि माता के तुल्य रक्षक है, (मधुमत) विषैले जन्तुओं से रहित हो। (नः) हमारा (पिता) के तुल्य रक्षक (द्यौः) आकाशमण्डल (मधु) सुखकारक (अस्तु) हो ।।२।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । मधु मान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।।३।।

—(यजु० अ० १३। मं० २९)

अर्थ—(नः) हमारे लिए (वनस्पतिः) यज्ञोपयुक्त औषधियाँ वा सोम (मधुमान्) माधुर्ययुक्त हों (सूर्यः) सूर्य मण्डल (मधुमान्, अस्तु) सुखकारी हो। (गावः) सूर्य की किरणें वा यज्ञोपयोगी गवादि पशु (माध्वीः) रसयुक्त (भवन्तु) हों ।।३।।

पश्चात् निम्न मन्त्र को पढ़कर, दाहिने हाथ की अनामिका और अँगुष्ठ से वर मधुपर्क को तीन बार मिलावे—

ओ३म् नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि।।

पार० गृ० सू० का० १। क० ३। सू० ६।।

अर्थ—हे अग्ने ! जठराग्ने (श्यावास्याय, ते) पीले वर्ण वाले तेरे लिए मैं (नमः) आदर करता हूँ और (ते) तेरे (अन्नशने) अन्न के तुल्य अशन—भोज्य इस मधुपर्क में (यत्) जो वस्तु न खाने योग्य (आ, विद्धम) मिला हुआ है (तत्) उसे (निष्कृन्तामि) हटाता हूँ ।।

वर द्वारा मधुपर्क से छींटे देना

ओ३म् वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु ।।

अर्थ—(गायत्रेण, छन्दसा) गायत्री छन्द के साथ (त्वा) तुझे (वसवः) वसु संज्ञक विद्वान् (भक्षयन्तु) खावें ।।

इस (उपर्युक्त) मन्त्र से पूर्व दिशा में छींटा देवें।

ओ३म् रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ।।

अर्थ—(त्रैष्टुभेन, छन्दसा) त्रैष्टुभ, छन्द के साथ (त्वा) तुझे (रुद्राः) रुद्र संज्ञक विद्वान् (भक्षयन्तु) खावें।

इस (उपर्युक्त) मन्त्र से दक्षिण दिशा में छींटा देवें।

---

१. इस मन्त्र से मधुपर्क को विलोडन करते हुए यदि कोई छोटा तृण आदि पड़ा हो तो निकाल देना चाहिए। यहाँ पाराशर का ऐसा मत है कि "अनामिकांगुष्ठेन च त्रिर्निरुक्षयति" अनामिका और अँगूठे से तीन बार मधुपर्क का थोड़ा सा हिस्सा पात्र से बाहर फेंक देना चाहिए।

ओ३म् आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थ–(जागतेन, छन्दसा) जगती छन्द के साथ (त्वा) तुझे (आदित्याः) आदित्य संज्ञक विद्वान् (भक्षयन्तु) खावें ॥

इस (उपर्युक्त) मन्त्र से पश्चिम दिशा में छींटा देवें।

ओ३म् विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थ–(आनुष्टुभेन, छन्दसा) अनुष्टुप् छन्द को बोलते हुए (त्वा) तुझे (विश्वे, देवा) सब विद्वान् (भक्षयन्तु) खावें।

इस उपर्युक्त मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा जल छोड़ें अर्थात् छींटे देवें।

ओ३म् भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥

(आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० १४-१५)

अर्थ–(भूतेभ्यः) अन्य प्राणियों के लिए भी (त्वा) तुझे (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूँ।

इस (उपर्युक्त) मन्त्रांश को बोलकर मध्य भाग में से लेकर ऊपर की ओर तीन बार फेंकें[1]। तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन काँसे के पात्रों में रखकर भूमि में अपने सम्मुख तीनों पात्र रखें। पश्चात्–

वर द्वारा निम्न मन्त्र का तीन बार उच्चारण

ओ३म् यन्मधुनो मधव्यं परमं, रूपमन्नाद्यम् तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि।

–पार० गृ० सू० का० १। क० ३॥

१. यहाँ पर जैसा आश्वलायन गृह्यसूत्र के टीकाकार का मत है वैसा ही मूल में लिख दिया है। सम्भव है वसु आदि ब्रह्मचारियों का नाम ले लेकर मधुपर्क के भाग को छोड़ने से उनकी प्रतिष्ठा पूर्व काल में द्योतित होती हो।

अर्थ–हे विद्वानो ! (यत्) जो (मधुनः) पुष्पों के रस का (मधव्यम्) मिष्टता के लिए उपयुक्त (परमम्, रूपम्) यह पवित्र (अहम्) मैं (तेन, मधुनो मधव्येन) उसी मधु के माधुर्योपयोगी (अन्नाद्येन) अन्न के तुल्य खाने योग्य (परमेण, रूपेण) सुन्दर स्वरूप से (परमः मधव्यः, अन्नादः) पवित्रः, मधुरभाषी, अन्नमात्र के भोक्ता, आपकी कृपा से (असानि) होऊँ।

इस मन्त्र को क्रमशः एक-एक बार (कुल तीन बार) बोलकर एक-एक भाग में से वर थोड़ा प्राशन करे (खावे) व सब प्राशन करे जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट[×] मधु रहा हो वह किसी स्थान पर या जल में डाल देवे[+] तत्पश्चात्–दो मंत्रों से दो आचमन (वर द्वारा)–

१. ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥

आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० २१॥

अर्थ–हे अमृत ! तू प्राणियों का आश्रयभूत है, यह हमारा कथन शोभन हो।

२. ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥

आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० २२॥

अर्थ–मुझमें सत्यता, कीर्ति, शोभा लक्ष्मी स्थित हो।

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे, तत्पश्चात् वर 'ओ३म् वाङ्म आस्येस्तु' आदि से चक्षुरादि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे।

× मधुपर्क अनुमान से उतना ही तैयार होना चाहिये जितना वर खा सके। जहाँ तक हो सके उच्छिष्ट नहीं छोड़ना चाहिये।

\+ जहाँ कोई मनुष्य आते-जाते न हों वहाँ डाले, ऐसा पारस्कर का मत है। जल में डालना, आश्व० गृ० सू० १। २४। १६ का मत है।

आचमन एवं अंगस्पर्श

कन्या एवं माता-पिता द्वारा गोदान विधि

ओ३म् गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम्

अर्थ–कृपया यह गौ लीजिये ।

इस वाक्य से वर की विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य जोकि वर के योग्य हों, अर्पण करें । और वर–

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ॥

अर्थ–मैं स्वीकार करता हूँ ।

इस वाक्य से उसको ग्रहण करे । इस प्रकार मधुपर्क विधि यथावत् करके कार्यकर्त्ता वर और वधू को सभामण्डप स्थान+ से घर में ले जाकर वर को शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठाकर वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बिठावें और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठकर–

पिता, पितामह, प्रपितामह के नाम सहित गोत्रोच्चारण

ओ३म्● अमुकगोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नी+ मलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ॥

● गाय के पालन-पोषण की उचित व्यवस्था हो तभी गाय का देना ठीक है। इस समय सारे दहेज को जो कन्या को देना है, वेदी पर लाने की आवश्यकता नहीं। प्रतीक मात्र जो शक्ति हो १), ११), २१), ५०), १००), ५००) कन्या के हाथ में देकर नैग पूरा किया जा सकता है । दहेज शास्त्रीय है, दहेज ठहराव घोर पाप है।

+ यदि सभा मण्डप स्थापन न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो, उससे दूसरे घर में वर को ले जायें ।

● 'अमुक' इस पद के स्थान में जिस गोत्र और कुल में वधू उत्पन्न हुई हो इसका उच्चारण करना यथा, कोई वधू गोयल गोत्र अग्रवाल कुल में उत्पन्न हुई हो तो 'अग्रवाल कुल गोयल गोत्रोत्पन्नां' ऐसा बोलें ।

अमुक गोत्रोत्पन्नाम्, से पहले 'वर गोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् नाम-संकीर्तयेविद्वान् कायायाश्चैवमेव हि' इत्यादि । पार० गृ० सू० का० १। कृ० ४ का हरीहर भाष्य देखना चाहिये, यहाँ यह स्पष्ट है कि यहाँ वर-वधू दोनों पक्षों के पिता, पितामह, प्रपितामह का गोत्रोच्चारण पूर्वक नाम लिया जाता है । (विधि व्याख्या में देखें ।)

+ 'अमुक नाम्नी' इस स्थान पर वधू का नाम द्वितीया विभक्ति के एक वचन से बोलना । यथा वधू का नाम 'सुखदा' हो तो 'सुखदा नाम्नीमलंकृतां' ऐसा बोलें ।

अर्थ–अमुक गोत्रोत्पन्न अमुक नाम वाली, तेजस्वी भूषणादि से अलंकृत इस कन्या को आप स्वीकार करें ।

इस प्रकार बोलकर वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रखकर उसके हाथ में वधू का दक्षिण (दाँया) हाथ चत्ता ही रखना+ और वर निम्न वाक्य कहे–

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ॥

अर्थ–स्वीकार करता हूँ ।

वर द्वारा वधू को स्वदेशी वस्त्र देकर सत्कार करना

पश्चात् वर निम्न मन्त्र को बोलकर वधू को उत्तम वस्त्र देवे ।

ओ३म् जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥

–पार० गृ० का० १। क० ४॥

अर्थ–हे कन्ये ! तुम (जराम्) निर्दोष वृद्धावस्था को, मेरे साथ (गच्छ) प्राप्त होओ । और मेरे दिये हुए इस (वासः) वस्त्र को (परि, धत्स्व) पहनो । (कृष्टीनाम्) कामादिकों से खेंचे हुए मनुष्यों के बीच में (वा) निश्चयरूप से (अभिशस्तिपाः) अभिशाप–प्रमाद से अपने

+ इस प्रकार वर के हाथ में कन्या का हाथ कन्या के माता-पिता अथवा अभिभावक को रखना चाहिये । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे अपनी कन्या को वर के लिये गाय-भैंस की तरह दान कर रहे हैं । लोक व्यवहार में प्रचलित 'कन्यादान' का आशय उत्तरदायित्व का हस्तान्तरण मात्र है । अब के बाद कन्या के पालन-पोषण तथा भावी जीवन के विकास का दायित्व माता-पिता वर महोदय को सौंप रहे हैं । इतना मात्र ही इसका अभिप्राय है ।

आपकी रक्षा करने वाली (भव) होओ। (शतं, च, शरदः) और सौ वर्ष पर्यन्त (जीव) प्राण धारण कर और (सुवर्चाः) तेजस्विनी होकर (रयिम्) धन और (अनु) पीछे (पुत्रान्) पुत्रों का संग्रह करो। हे (आयुष्मति) सुन्दर आयु वाली कन्ये! तुम (इदं, वामः) इस वस्त्र को (परि, धत्स्व) पहिनो।

तत्पश्चात् वर निम्न मन्त्र को बोलकर वधू को उपवस्त्र● देवे+।

ओ३म् या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मनीदं परिधत्स्व वासः।

—सा० मं० १ ब्रा० १।१।६।

अर्थ—(याः) जिन व्यवसायिनी स्त्रियों ने, इस वस्त्र के सूत को (अकृन्तन्) काता है और (याः) जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत को (अवयन्) बुना है (याः, च) और जिन्होंने इसके सूत को (अवयन्) बुना है (याः, च) और जिन्होंने इसके सूत को (अतन्वत्) फैलाया है और जिन (देवीः) देवियों ने (तन्तुन) इस वस्त्र के सूतों को (अभितः) दोनों ओर से (ततन्थ) सूची कर्म से व तुरी आदि के व्यापार से गूँथ कर फैलाया हैं। (ताः देवीः) वे देवियाँ (त्वा) तुम्हारे प्रति (जरसा) वृद्धावस्था पर्यन्त ऐसे ही वस्त्र (सव्ययस्व) पहनाता रहें। हे (आयुष्मति) प्रशस्त आयु वाली कन्ये! (इदं वासः) इस वस्त्र को तुम (पार, धत्स्व) पहिनो! इस मन्त्र में पुरुषादिव्यत्यय छान्दस है। इस मन्त्र का, सामवे० मं० ब्रा० प्र० १। खं० १। मं० ५ में पाठभेद है। अर्थ दोनों का एक ही है।

● 'उपवस्त्र देवे' या पहनावे। अगले मन्त्र से भी उपवस्त्र उत्तरीय वस्त्र देवें या वर पहनावे, ऐसा जान लेना चाहिए, पारस्करादि गृह्यसूत्रों में पहनाने की विधिहै।

+ और इन वस्त्रों को लेकर वधू दूसरे घर में एकान्त में जाकर धारण करे और उपवस्त्र को यज्ञोपवीत व्रत धारण करे।

३- वर द्वारा वधू की माँग में सिन्दूर भरना
२- वधू की भाभी द्वारा बिछिया पहिनाना
१ कन्या के पैरों में रंग लगाया

वर का वस्त्र धारण करना

तत्पश्चात् निम्न दो मन्त्रों को बोलकर वर प्रथम मन्त्र से अधोवस्त्र (धोती आदि) तथा दूसरे मन्त्र से उपवस्त्र (दुपट्टा आदि) को धारण करे—

ओ३म्● परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये॥

अर्थ—हे सज्जनो! अपने शरीर को आच्छादित करने के लिये, प्रतिष्ठा के लिये और दीर्घ जीवन के लिये शरीररूप धन की पुष्टि करने वाले सुन्दर वस्त्रों को मैं समावृत्त अच्छे प्रकार धारण करूँगा क्योंकि बहुत धन पुत्रादि से संयुक्त होकर मैं वृद्धावस्थापर्यन्त जीवन की इच्छा रखता हूँ। ईश्वर कृपा करे कि मैं सौ वर्ष वृद्धावस्थापर्यन्त जीवन लाभ करूँ।

ओ३म् यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती। यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम्॥

अर्थ—हे सज्जनो! अन्तरिक्ष और पृथ्वी लोक मुझे यश के साथ ही मिलें धनी और विद्वान् मुझे यश के साथ ही प्राप्त हों। मुझे ईश्वर यश का लाभ करावें और आप लोग आशीर्वाद दें कि मुझे यह प्रतिष्ठा प्राप्त हो, यह वस्त्र पहिनाने की विधि पार० गृ० सू० में है।

● यह मन्त्र और अगला 'यशसा०' यह मन्त्र मानव गृ० रा० खं० ६। सू० २ के अनुसार लिखा है।

वर-वधू दोनो को यज्ञोपवीत धारण करावे।

कार्यकर्त्ता बड़े होम की तैयारी करें

इस प्रकार (इस बीच में) परिधान करके वधू जब तक सँभले, तब तक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई व्यक्ति यज्ञमण्डप में जाकर सब सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़कर रखे। और वर पक्ष का एक पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को लेकर[1] यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलश स्थापन कर जब तक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो जाये तब तक बैठा रहे। और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड लेकर कुण्ड के दक्षिण भाग में कार्य समाप्ति पर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे। और वधू का सहोदर भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई, मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो, वह चावल या जुआर की धाणी (खील) और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिलाकर शमीपत्र युक्त धाणी के चार अंजलि एक शुद्ध सूप में रखकर धारणी सहित सूप लेकर यज्ञ कुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। फिर कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला जोकि सुन्दर चिकनी हो उसको तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन या यज्ञिय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल जोकि प्रथम से सिद्ध (तैयार) कर रखें हो उन आसनों को रखवायें। तत्पश्चात् वस्त्र धारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के सम्मुख लावें और उस समय वर और कन्या यह मन्त्र का उच्चारण करें–

---

१. जल कुम्भ को ग्रहण करना आदि सब विधि, पारस्करादि गृह्यसूत्रों में पाई जाती है। ग्रन्थ के विस्तार भय से सब स्थलों में प्रमाण-निर्देश नहीं किया गया है।

वर और कन्या दोनों निम्न मन्त्र बोलें

ओ३म् समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥१॥

–ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४७॥ पा० १। ४। १४

अर्थ–वर और कन्या बोलें–हे (विश्वे, देवाः) इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगों! आप हम दोनों का (समञ्जन्तु) निश्चय करके जानें कि हम अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे को स्वीकार करते हैं। (नौ) हमारे दोनों के (हृदयानि) हृदय (आपः) जल के समान (सम्) शान्त और मिले हुए रहेंगे। जैसे (मातरिश्वा) प्राणवायु हमको प्रिय है वैसे (सम्) हम दोनों एक दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे। जैसे धारण करने हारा परमात्मा सबमें (सम्) मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे। जैसे (समुदेष्ट्री) उपदेश करने वाला श्रोताओं से प्रीति करता है वैसे (नौ) हमारे दोनों की आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को (दधातु) धारण करे॥१॥

तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़े हुए–

वर निम्न मन्त्र बोले

ओ३म् यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा।
हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु असौ ॥२॥ (कन्या का नाम)

पार० गृ० सू० का० १। क० ४। सू० १५॥

अर्थ–(असौ) इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करें। हे वरानने! (यत्) जैसे (मनसा) अपनी इच्छा से (पवमानः) पवित्र वायु अथवा जैसे (हिरण्यपर्णो, वैकर्णः) तेजोमय जल आदि को किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ पदार्थों और (दिशोऽनु) दिशाओं को

प्राप्त होता है, वैसे तुम प्रेम-पूर्वक अपनी इच्छा से मुझको प्राप्त होती हो। उस (त्वा) तुम को (सः) वह परमेश्वर (मन्मनसाम्) मेरे मन के अनुकूल (करोतु) करे। (उसी प्रकार कन्या कहे) और जो आप मन से मुझको (एषि) प्राप्त होते हो उसे आपको जगदीश्वर मेरे मन के अनुकूल सदा रखें ॥२॥

इस मन्त्र को बोलकर वर-वधू को लेकर घर के बाहर मण्डप स्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए आवे और–

पुनः वर निम्न दो मन्त्र बोले

१- **ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अघोर चक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदेशं चतुष्पदे ॥३॥**

ऋ० मं० १०। सू० ८५ मं ४४॥

अर्थ–हे वरानने ! (अपतिघ्नि) पति से विरोध न करने हारी ! जिसके (ओम्) रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुव) सब दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों के दाता आदि नाम हैं, उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से तुम (अघोरचक्षुः) प्रिय दृष्टिवाली (एधि) हो (शिवा) मंगल करने हारी (पशुभ्यः) सब पशुओं की सुखदाता (सुमनाः) पवित्रान्तःकरण युक्त प्रसन्नचित्त (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसः) उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने हारी (देवृकामा) देवर की शुभ कामना करती हुई (स्योना) सुखयुक्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिये (शम्) सुख करने वाली (भव) सदा हो। और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओं को भी (शम्) सुख देने हारी हो वैसे ही मैं तुम्हारा पति भी वर्ता करूँगा ॥३॥

२- **ओ३म् भुर्भुवः स्वः । सा नः पूषा शिवतमामैरयसा न ऊरू उशतो विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामुकामा बहवो निविष्टयै॰ ॥४॥**

–पार० १। ३। १६

अर्थ–(सा, पूषा) वह प्रसिद्ध जगत् का पोषक–परमात्मा (नः) हमारे प्रति (शिवतमाम्) अत्यन्त कल्याणकारिणी तुम्हें (कन्या को) (ऐरय) प्रवृत्त करे अर्थात् हम में प्रीतियुक्त बनावे। (इस मन्त्र में भी प्रथम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग छान्दस है) जिससे कि (सा) वह कन्या (नः) हमारे लिये (उशती) सुखादि की इच्छा करती हुई (ऊरू विहर) स्वयं आनन्द को प्राप्त हो (यस्याम्) और जिसके कि (उशन्तः) सुखादि की इच्छा करते हुए हम (शेफम् प्र, हराम) आनन्द को प्राप्त हों और (यस्माम्, उ) जिस स्त्री में ही (बहवः कामाः) बहुत से धर्म, पुत्र, रमणादि रूप अभिलषणीय विषय (निविष्टयै) अग्निहोत्रादि द्वारा अन्तःकरण शुद्धिपूर्वक वैराग्य के लिये होते हैं ॥४॥

वर-वधू यज्ञ की महिमार्थ एक परिक्रमा करें

इन (उपर्युक्त) चार मन्त्रों को बोलने के पीछे दोनों वर, वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम में वर बैठे। पश्चात् वधू इस (निम्न) मन्त्र को बोलें।

---

१. पाठभेद से यह मन्त्र अथर्व० १४-२-३८ में है।

वधू द्वारा मंगल-प्रार्थना

ओ३म् प्र मे पतियानः पन्था कल्पता शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥

–गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० १।

अर्थ–(मे) मेरे (पतियानः) पति का जो मार्ग है वैसा ही मेरा भी (पंथाः) मार्ग (प्र, कल्पताम्) बने, जिससे कि मैं (शिवा) सुख पाती हुई। (अरिष्टा) निर्विघ्न होकर (पतिलोकम्) सबके पति परमात्मा को (गमेयम्) प्राप्त होऊँ ।

पुरोहित नियुक्ति[1]

फिर यथाविधि यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करें ।

तीन मन्त्रों से तीन आचमन

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥

अर्थ–हे सुखप्रद जल ! तू प्राणियों का आश्रयभूत है, यह हमारा कथन शोभन हो ॥

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥

अर्थ–(अमृत) सुखप्रद जल ! तू (अपिधानम्) निश्चय पोषक (असि) है ।

१. पुरोहित-विद्वान्, धर्मात्मा और सदाचारी हो, यह आवश्यक है ।

आचमन, अंगस्पर्श, प्रार्थनोपासना, दैनिक यज्ञ

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम् स्वाहा ॥३॥

अर्थ–(मयि) मुझमें (सत्यम्) सचाई (यशः) कीर्ति (श्रीः) शोभा (श्रीः) लक्ष्मी (श्रयताम्) स्थित हो ।

इन तीन (उपर्युक्त) मन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र से एक-एक आचमन वर, वधू, पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके, हाथ और मुख प्रक्षालन कर एक शुद्ध पात्र में करके दूर रखवा दें ।

यज्ञ का आरम्भ

अग्न्याधान, समिदाधान, जल सेचन

हाथ और मुख पोंछकर यज्ञकुण्ड में (**ओ३म् भूर्भुवः स्वद्यो रिव०**) इस मन्त्र में अग्याधान, (**ओ३म् अयन्त इध्म०**) इत्यादि मन्त्रों से समिदा-धान और (**ओ३म् अदितेऽतुमन्यस्व**) इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के चारों ओर दक्षिण हाथ की अंजलि से शुद्ध जल सेवन करें ।

सोलह आज्याहुति

कुण्ड में डाली हुई समिधाओं के प्रदीप्त हुए पश्चात् वधू, वर, पुरोहित और कार्यकर्त्ता (**ओ३म् अग्नये स्वाहा**) इत्यादि चार आधारा-वाज्यभागाहुति घी की दें फिर व्याहृति[●] आहुति (**ओ३म् भूरग्नये स्वाहा**) इत्यादि चार घी की तथा सामान्य प्रकरणोक्त अष्टाज्याहुति (**ओ३म् त्वन्नो अग्ने० इत्यादि**) आठ–सब मिलाकर सोलह आज्याहुति दें ।

● वह सब पार. गृ. सू. कं. ५ के अनुसार है ।

प्रधान होम का आरम्भ (वर-वधू द्वारा)

पश्चात् प्रधान होम का आरम्भ करें। प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श करे।

प्रधान होम की पाँच आहुतियाँ

सामान्य प्रकरणोक्त (**ओ३म् भूर्भुवः स्वः अग्न आयूंषि०**) इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात् एक-एक से एक-एक मिलकर चार आज्याहुति क्रम से करें। और इस (निम्नलिखित) मन्त्र से पाँचवीं आहुति देवें।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। त्वमयमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावनुह्यं बिभर्षि। अंजन्ति मित्रं सुधितं न गोभियद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम॥

ऋ० मं० ५। सू० ३। मं० २॥ आ० १। ४। ७॥

अर्थ–हे (स्वधावन्) हविर्लक्षण अग्नि के सम्पादक परमात्मन् (यत्, त्वम) जो तू (कनीनाम्) कन्या आदिकों का भी नियम में रखने वाला (भवसि) है और तू सब जगत् की (गुह्यं, बिभर्षि) गुप्त रूप से रक्षा करने वाला है यह बात (नाम) विद्वानों को प्रसिद्ध है। (यत्) जिन (दम्पती) स्त्री पुरुषों–पति और पत्नी को, तू (समनसा) तुल्यमनस्क-एकचित् (कृणोषि) शुभकर्म द्वारा करता है, वे दम्पती (मित्रं, न) मित्र को नाई (सुधितम्) अच्छे प्रकार पोषक आपको (गोभिः) गौ के विकारभूत घृतादिकों से हवन द्वारा आपकी आज्ञा पालन करते हुए आपको (अञ्जन्ति) पूजित करते हैं।

राष्ट्रभृत होम की बारह आहुतियाँ

तत्पश्चात्–इन (निम्न) १२ मन्त्रों से १२ आज्याहुति दें।

ओ३म् ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय-इदन्न मम॥१॥

–य० १८। मं० ३८

ओ३म् ऋताषाड्ऋतधामाग्निर्गन्धवस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः इदन्न मम॥२॥

अर्थ–(ऋताषाड्) सत्य ब्रह्म की आज्ञा को सहन करने वाला (ऋतधामा) ब्रह्म से ही प्राप्त है तेज जिसको (गन्धर्वः वाणी को धारण करने वाला (अग्निः) अग्नि तत्व है। (तस्य) उसी अग्नि के सम्बन्धी अर्थात् अग्नितत्व प्रधान (ओषधयः) औषधियाँ जोकि (अप्सरसः) अन्तरिक्ष व जल में व्याप्त हैं वे (मुदः नाम) सुखस्वरूप–सुख देने वाली है, यह बात विद्वानों को प्रसिद्ध हैं। (सः) वह अग्नि (नः) हमारे लिये (ब्रह्म, क्षत्रम्) ब्राह्मण और क्षत्रियों की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उस अग्नि के लिए (स्वाहा, वाट्) सुहुत हो और (ताभ्यः) उन औषधियों के लिए भी (स्वाहा) सुहुत हो। अप् शब्द निघंटु में अन्तरिक्ष और जल का भी वाचक है। १-२।

---

१. इन्हीं बारह आहुतियों की 'राष्ट्रभृत' संज्ञा पार० सू० में है।

ओ३म् स ँ हितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं स ँ हिताय विश्व साम्ने सूर्याय गन्धर्वाय इदन्न मन ।।३।।

–य० १८।३९ ।।

ओ३म् सँ हितो विश्वसामा सूर्या गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ताभ्यः स्वाहा । इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः इदन्न मम ।।४।।

अर्थ–(संहितः) दिन और रात्रि को सन्धि करने वाला (विश्वसामा) संसार में शान्ति पहुँचाने वाला (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला (सूर्यः) सूर्य है । (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त (तस्य, मरीचयः) उस सूर्य की किरण आयुवः, नाम, प्रसिद्ध है कि मिली हुई हैं (सः) वह सूर्य० । शेष पूर्ववत् ।। ३-४ ।।

ओ३म् सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सुषुम्णाय सूर्यरश्मये चन्द्रमसे गन्धर्वाय इदन्न मम ।५।

–य० १८।४०

ओ३म् सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ताभ्यः स्वाहा । इदं नक्षत्रेभ्योप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः इदन्न मम ।।६।।

अर्थ–(सुषुम्णः) अच्छे प्रकार सुख देने वाला (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणें जिसमें पड़ती हैं ऐसा (गन्धर्वः) रश्मि को धारण करने वाला (चन्द्रमाः) चाँद है (तस्य) उसके सम्बन्ध से ही (नक्षत्राणि) नक्षण (भेकुरयः, अप्सरसः) प्रकाश को करने वाले होकर अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं यह बात (नाम) विद्वानों की है, शेष पूर्ववत् ।। ५-६ ।।

ओ३म् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय, इदन्न मम ।।७।।

–य० अ० १८।४१

ओ३म् इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऊर्ज्जो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमद्भ्योऽसरोभ्यऽऊर्ग्भ्यः, इदन्न मम ।।८।।

अर्थ–(इषिरः) गमनशील (विश्व व्यचाः) सब जगह व्याप्त (गन्धर्वः) वाणी को बल देकर धारण करने वाला (वातः) वायु है (तस्य) उसके सम्बन्ध से ही (ऊर्जः) बल व प्राणादि वायु (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त है तथा (आपः) अन्यत्र भी हैं, शेष पूर्ववत् ।। ७-८ ।।

ओ३म् भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय, इदन्न मम ।। ९ ।।

–य० अ० १८। मं० ४२।।

ओ३म् भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम । ताभ्याः स्वाहा । इदं दक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः इदन्न मम ।।१०।।

अर्थ–(भुज्युः) सब भूतों का पालक (सुवर्णः) शोभन ज्ञान से सम्पादित (गन्धर्वः) पृथ्वी को धारण करने वाला (यज्ञः) यज्ञ है (तस्य) उसके सम्बन्ध में (अप्सरसः, दक्षिणाः) प्रसिद्धि को प्राप्त होने वाली दक्षिणा–धर्मात्मा विद्वानों को दान भी (स्तावा) स्तुति के योग्य है (नाम) यह विद्वानों को विदित है, शेष पूर्ववत् है ।। ९-१० ।।

ओ३म् प्रजाप तिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय, इदन्न मम ।।११।।

ओ३म् प्रजापतिविश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः इदन्न मम ।।१२।।

अर्थ–(प्रजापति) प्रजा का पति (विश्वकर्मा) सब कार्यों को करने वाला (गन्धर्वः) वाणी को प्रेरणा करके धारण करने वाला (मनः) मन है । (तस्य) उसके सम्बन्ध से ही (ऋक्सामानि) ऋग्वेद और सामवेद, गानादि द्वारा (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं, वे ऋक् और साम ही (एष्टयः) ईश्वर से प्रार्थना के साधन हैं (नाम) यह विद्वानों का प्रसिद्ध है, शेष पूर्वतुल्य ।

जयाहोम की १३ आज्याहुति

ओ३म् चितं च स्वाहा । इदं चित्ताय इदन्न मम ।।१।।

अर्थ–(चित्तम्) चित्तज्ञान के आधार हृदय को 'मेरे लिये देवे' ऐसे सम्बन्ध अगले मन्त्र की 'प्रायच्छत्' क्रिया को लेकर सर्वत्र कर लेना चाहिये ।।१।।

ओ३म् चित्तिश्च स्वाहा इदं चित्यै-इदन्न मम ।।२।।

अर्थ–(चित्तिः) हृदय की चेतना 'मेरे०' ।।२।।

ओ३म् आकूतं च स्वाहा । इदमाकूताय इदन्न मम ।।३।।

अर्थ–(आकूतम्) कर्मेन्द्रिय ।।३।।

१. ये मन्त्र छः ही हैं परन्तु उनका भाग करके १२ आहुतियाँ दी जाती हैं।

ओ३म् आकूतिश्च स्वाहा । इदमाकूत्यै-इदन्न मम ।।४।।

अर्थ–(आकूतिः) कर्मेन्द्रियों की प्रेरम शक्ति ।।४।।

ओ३म् विज्ञातम् स्वाहा । इदं विज्ञाताय-इदन्न मम ।।५।।

अर्थ–(विज्ञातम्) शिल्प-विज्ञान ।।५।।

ओ३म् विज्ञातिश्च स्वाहा । इदं विज्ञात्यै-इदन्न मम ।।६।।

अर्थ–(विज्ञाति) शिल्प-विज्ञान शक्ति ।।६।।

ओ३म् मनश्च स्वाहा । इदं मनसे-इदन्न मम ।।७।।

अर्थ–सुख-दुःख के ज्ञान का भीतरी साधन ।।७।।

ओ३म् शक्करोश्च स्वाहा। इदं शक्करोभ्यः इदन्न मम ।।८।।

अर्थ–(शक्वरीः) मनः शक्तियाँ ।।८।।

ओ३म् दर्शश्च स्वाहा । इदं दर्शाय-इदन्न मम ।।९।।

अर्थ–(दर्श) दर्शाष्टि यज्ञ-अमास्या का यज्ञ ।।९।।

ओ३म् पौर्णमाषं च स्वाहा। इदं पौर्णमासाय-इदन्न मम ।।१०।।

अर्थ–(पौर्णमासम्) पूर्णिमा सम्बन्धी यज्ञ ।।१०।।

ओ३म् वृहच्च स्वाहा । इदं वृहते इदन्न मम ।।११।।

अर्थ–(वृहद्) बड़प्पन ।।११।।

ओ३म् रथन्तरश्च स्वाहा । इद रथन्तराथ-इदन्न मम ।।१२।।

अर्थ–(रथन्तरं) साम विशेष ।।१२।।

ओ३म् प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनाजयेषु तस्मै । विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इ हव्यो बभूव स्वाहा । इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय-इदन्न मम ।।१३।।

अर्थ–(प्रजापतिः) परमात्मा ने (वृष्णे) यज्ञादि द्वारा मनुष्यों की इष्ट सिद्धि की वर्षा करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिए (जयान्) जय देने वाले मन्त्रों को (प्र, अयच्छत्) अच्छे प्रकार पूर्व से ही दे रखा है । जय मन्त्रों के प्रभाव से हो इन्द्र (पृतनाजयेषु) शत्रुओं की सेनाओं को जीतने

में (उग्रः) प्रचण्ड होता है। जीत के कारण ही (सर्वाः, विशः) सब मनुष्य उसके प्रति (सम्, अनमन्त) अच्छे प्रकार नमस्ते करते हैं व कर चुके हैं। (सः) वह जीतने वाला ही (उग्रः) प्रचण्ड होता है। (सः, इ) और वह ही (हव्यः) ग्रहण के योग्य हो चुका है व होता है ॥१३॥

इन (उपर्युक्त) प्रत्येक मन्त्रों से एक-एक करके जयाहोम[1] की तेरह आज्याहुति देनी।

अभ्यातन होम की १८ आज्याहुति

तत्पश्चात् अभ्यातन होम• इन (निम्नलिखित) मन्त्रों से करे-

ओ३म् अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यापाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा। इदमग्नये भूतानामधिपतये इदन्न मम ॥१॥

अर्थ-(अग्निः) भौतिक अग्नि (भूतानाम्) सब तत्त्वों व पदार्थों में (अधिपतिः) मुख्य वा पदार्थों का रक्षक है (सः) वह (मा) मेरी (अवतु) रक्षा करे। (अस्मिन् ब्रह्मणि) इस ब्राह्मण-समूह में (अस्मिन्, क्षत्रे) इस क्षत्रियों के समूह में (अस्याम्, आशिषि) इस प्रार्थना में (अस्याम्, पुरोधायाम्) इस आगे बैठी हुई कन्या के विषय में (अस्मिन्, कर्मणि) इस हवनादि कर्म में (अस्याम्, देवहूत्याम्) इस विद्वानों के आह्वान-बुलाने में रक्षा करे ॥१॥

ओ३म् इन्द्री ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् क्षत्रेऽस्या-

---

१. ये तेरह मन्त्र 'जय' मन्त्र कहलाते हैं। भर्तृयज का मत है कि 'स्वाहा' के योग में व्याकरणरीत्या चतुर्थी करके 'चिताय स्वाहा' इत्यादि रूप से बोलना चाहिए परन्तु कर्कर्यादि कहते हैं कि ये मंत्र स्वरूप हैं, देवता नहीं। अतः जैसे है वैसे ही रहने चाहिए।

माशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा। इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये-इदन्न मम ॥२॥

अर्थ-(ज्येष्ठानाम्) बड़े से बड़े पदार्थों में (इन्द्रः, अधिपतिः) सर्वैश्वर्यवाली विद्युत मुख्य है व उनकी रक्षक है। शेष पूर्ववत् ॥२॥

ओ३म् यमः पृथिव्या अधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬ स्वाहा। इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये-इदन्न मम ॥३॥

अर्थ-(यम) ऋतु ही (पृथिव्याः, अधिपतिः) इस सब पृथ्वी का स्वामी है। शेष पूर्ववत ॥३॥

ओ३म् वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं वायवे, अन्तरिक्षस्याधिपतये-इदन्न मम ॥४॥

अर्थ-(वायुः) पवन (अन्तरिक्षस्य, अधिपतिः) अन्तरिक्ष लोक का स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥४॥

ओ३म् सूर्यो दिवोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या स्वाहा। इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये-इदन्न मम ॥५॥

अर्थ-(दिवः) द्युलोक का (सूर्यः, अधिपतिः) सूर्य स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥५॥

ओ३म् चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्य- स्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये इदन्न मम ॥६॥

अर्थ-(नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों का (चन्द्रमाः, अधिपतिः) चन्द्रमा स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥६॥

ओ३म् बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये इदन्न मम ॥७॥

अर्थ–(बृहस्पतिः) बड़ों का पति परमात्मा (ब्रह्मणः, अधिपतिः) वेद का स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥७॥

ओ३म् मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं मित्राय सत्यानामधिपतये–इदन्न मम ॥८॥

अर्थ–(सत्यानाम्) सत्य पदार्थों का (मित्रः, अधिपतिः) सूर्यादि-प्रकाशक पदार्थ स्वामी हैं। शेष पूर्ववत् ॥८॥

ओ३म् वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं वरुणाणामधिपतये–इदन्नं मम ॥९॥

अर्थ–(अपाम्) स्थूल जलों का (वरुणः अधिपतिः) स्वीकार योग्य सूक्ष्म जल स्वामी है ॥९॥

ओ३म् समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं समुदाय स्रोत्यानामधिपतये–इदन्नं मम ॥१०॥

अर्थ–(स्रोत्यानाम्) स्रोत से बहने वाले जलों का (समुद्रः, अधिपतिः) समुद्र स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥१०॥

ओ३म् अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये इदन्नं मम ॥११॥

अर्थ–(साम्राज्यानाम्) चक्रवर्तियों के ऐश्वर्यों का (अन्नम् अधिपतिः) अन्न स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥११॥

ओ३म् सोमऽओषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतये–इदन्नं मम ॥१२॥

अर्थ–(ओषधीनाम्) औषधियों की (सोमः अधिपतिः) सोमलता स्वामी है ॥१२॥

ओ३म् सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये–इदन्न मम ॥१३॥

अर्थ–(प्रसवानाम्) फल पुष्पादि का (सविता अधिपतिः) सूर्य स्वामी है ॥१३॥

ओ३म् रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं रुद्राय पशूना मधिपतये इदन्न मम ॥१४॥

अर्थ–(पशूनाम्) पशुओं का (रुद्रः अधिपतिः) व्याघ्रादि हिंसक जीवों को रुलाने वाला स्वामी है। ······ ॥१४॥

ओ३म् त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये–इदन्नं भम ॥१५॥

अर्थ–(रूपाणाम्) दृष्टव्य पदार्थों का (त्वष्टा अधिपतिः) उत्तम शिल्पी स्वामी है ॥१५॥

ओ३म् विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं विष्णवे, पर्वतानामधिपतये इदन्न मम ।।१६।।

अर्थ–(पर्वतानाम्) मेघों का (विष्णुः अधिपतिः) यज्ञ स्वामी है ।।१६।।

ओ३म् मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामामाशिष्यस्यां पुरोधायामास्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः इदन्न मम ।।१७।।

अर्थ–(गणानाम्) समूहों के (मरुतः देवता का नायक (ते) वे० ।।१७।।

ओ३म् पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहा इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्तते- भ्यस्ततामहेभ्यश्च–इदन्न मम ।।१८।।

अर्थ–(पितरः) पिता, चाचा आदि (पितामहाः) पिताओं के पिता (परे, अवरे) उत्कृष्ट कोटि के और नीचे दर्जे के (ततः) और जो फैले हुए कुटुम्ब के लोग हैं, वे तथा (पितामहाः) उन लोगों में भी जो पूजनीय हैं वे शेष पूर्ववत् ।।१८।।

इस प्रकार अभ्यातन होम की अठारह आज्याहुति दिये पीछे–

८ विशेष आज्याहुति देव

ओ३म् अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयꣳराजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री-पौत्रमधन्न रोदात् स्वाहा । इदमग्नये–इदन्न मम ।।१।।

अर्थ–(देवतानां, प्रथमः) देवताओ में मुख्य (मृत्युपाशात्- मृत्युपाशमिति भस्मीकरोतीति) अकाल मृत्यु के बन्धन को भस्म करने वाला (अग्निः) अग्निदेव (आ, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो । और (सः) वह अग्निदेव (अस्यै) इस कन्या के लिये (प्रजाम्) सन्तान् को (मुञ्चतु) देवे । (तत्) उस प्रजादान का (अयं वरुणः, राजा) यह सबसे श्रेष्ठ परमात्मारूपी राजा (अनुमन्यताम्) पश्चात् सहायक हो (यथा) जिस प्रकार से कि (इयम्, स्त्री) यह स्त्री (पौत्रम्, अघम) पुत्र सम्बन्धी दुःख को (न, रोदात्) न रोवे, न प्राप्त हो ।।१।।

ओ३म् इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियं स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न ।।२।।

अर्थ–(गार्ह पत्यः) गृहस्थसम्बन्धी अग्निहोत्र की (अग्निः) अग्नि (इमाम्) इस कन्या की (त्रायताम्) ईश्वर करे कि रक्षा करे । (अस्यै) इस स्त्री की (प्रजाम्) सन्तान को परमात्मा (दीर्घम्, आयुः,) बड़ी आयु (नयतु) प्राप्त करावे । और यह स्त्री (अशून्योपस्था) बन्ध्यात्व-दोष से रहित होकर (जीवताम्) जीने वाले सन्तानों की (माता, अस्तु) माता हो और (इयम्) यह स्त्री (पौत्रम् आनन्दकम्) पौत्र सम्बन्धी आनन्द को (अभि, वि, बुध्यताम्) प्राप्त होकर विशेष रूप से जाने ।।२।।

ओ३म् स्वस्तिनोऽग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा-यजत्र। यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्ततदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रꣳ स्वाहा । इद मग्नये-इदन्न मम ।।३।।

अर्थ–हे (यजत्र) यज्ञ करने वाले की रक्षा करने वाले (अग्ने) अग्निदेव ! (नः) हमारे (विश्वानि) सब कामों को, जो कि (अयथा) अन्यथा–प्रतिकूल हुए हैं, उनको (स्वस्ति) सम्पूर्ण अनुकूल करके

(धेहि) स्थापन करो । और (दिव, आ) आकाश लोक तक (पृथिव्या, आ) पृथ्वी तक (यत्) जो (महि) महिमा–महत्व है (तत्) उसे (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) रखो और जो (अस्याम्) इस पृथ्वी में (जातम्) पैदा हुआ (चित्रम्) नाना प्रकार का (द्रविणम्) धन है उसे और जो (दिवि) आकाश लोक में (प्रशस्तम्) श्रेष्ठ वस्तु है, उसे हम लोगों में स्थापित करो ॥३॥

ओ३म् सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्नऽआयुः अपैतु मृत्युरमृतं म आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहा । इदं वैवस्वताय-इदन्न मम ॥४॥

अर्थ–हे परमात्मन् ! आप (सुगं, पन्थाम्) सुख से प्राप्तव्य मार्ग का (प्रदिशन्, नु) हमारे मन में उपदेश करते हुए ही (नः) हमको (एहि) प्राप्त हों । और हमें (ज्योतिष्मत्) प्रकाशयुक्त दोष-रहित (अजरम्) जरा-वस्था के विकारों से रहित (आयुः) जीवन को (धेहि) दीजिये (मृत्यु) आयु का प्रतिबन्धक मृत्यु (अप, एतु) हमसे हट जावे । (मे) मेरे लिए (अमृतम् मोक्ष आ, आगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो । (वैवस्वतः) सूर्य का जैसा आपका प्रकाश (नः) हमें (अभयम्) भयरहित (कृणोतु) करे ॥४॥

ओ३म् परं मृत्योऽअनु परेहि पन्थां यत्र नोऽअन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा । इदं मृत्यवे-इदन्न मम ॥५॥

अर्थ–हे (मृत्यो) मृत्यु के अधिष्ठातृदेव ! (यत्र) जहाँ कही (नः) हम लोगों के बीच में (अन्यः) दूसरा (देवयानात् इतरः) विद्वानों के गन्तव्य मार्ग से पतित हुआ पुरुष है उसको (परं पन्थाम्) द्वितीय लोक के (अनु) सम्मुख (परा, इहि) हम से पराङ्मुख करके ले जाओ । (चक्षुष्मते,

शृण्वते) बिना आँख, कान के भी देखने और सुनने वाले (ते) तुझसे (ब्रवीमि) प्रार्थना करता हूँ कि (नः) हमारी (प्रजाम्) सन्तान को (मा, रीरिषः) मत नष्ट कर (उत) और (वीरान्) देश के वीरों को भी नष्ट मत करो ।

ओ३म् द्यौस्ते पृष्ठꣳरक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च । स्तनन्धपस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वावारासः परिधाद्बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात् स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः इदन्न मम ॥६॥

अर्थ–हे कन्ये ! (ते पृष्ठम्) तेरे पृष्ठ भाग की (द्यौः) द्यु लोकस्थ सूर्य (रक्षतु) रक्षा करे (च) और (अश्विनौ) विद्वान् वैद्य (वायुः) वातादि के रोग से (उरू) तेरे ऊर्वादि नीचे के प्रदेशों की रक्षा करे । (आ, वाससः, परिधानाद्) सभ्यतापूर्वक वस्त्र पहनने आदि के पूर्व (ते स्तनन्धयः, पुत्रान्) तेरे दुग्ध पीते बालकों की (सविताः) उत्पादक पिता रक्षा करे । (पश्चात्) पीछे से उन बालकों की (बृहस्पतिः) गुरुकुल का आचार्य और (विश्वे देवाः) देश के सब विद्वान् लोग (अभिरक्षन्तु) चारों तरफ से रक्षा करें ॥६॥

ओ३म् मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु । मा त्वं रुदत्युर आवोधष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्तो प्रजां सुमनस्यमानां स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥७॥

–म० ब्रा० १।१-३ । गोभि० २।१ । सू० १-२६ ।

अर्थ–हे कन्ये ! (निशि) रात्रि में (ते, गृहेषु) तुम्हारे घरों में (घोषः) आर्तनाद-दुःख देने वाले शब्द (मा, उत्थात्) ईश्वर करे कि न उठे (त्वत्) तुझ धर्मचारिणी से (अन्यत्र) अधर्मियों के यहाँ स्त्रियाँ (रुदत्यः) रोती हुई (मा, विशन्तु) न सोवें व न घुसें । (त्वम्) तुम (रुदत्)

रोती हुई, दुःख उठाती हुई (पुरे) अपने घर में अपने आश्रित भृत्यादिकों को (मा, आ, वधिष्ठाः) मत मारो। (जीवपत्नी) जीवित-जागृत होती हुई (पतिलोके) पति के घर में (वि, राज) सुशोभित हो (सुमनस्यमानाम्) सुप्रसन्नचित्त (प्रजाम्) अपनी संतति को (पश्यन्ती) देखती हुई तू सुशोभित हो ॥७॥

ओ३म् अप्रजस्यं पौत्रमर्त्य पाप्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशं स्वाहा । इदमग्नये-इदन्नं मम ॥८॥

अर्थ–हे कन्ये ! (अप्रजस्यम्) पुत्र शून्यता-दोष को और (पौत्रमर्त्यम्) पुत्र सम्बन्धी दुःख को (उत, वा) अथवा (पाप्मानम् अघम्) पापरूप व्यसन को और (द्विषद्भ्यः) द्वेष करने वाले अधर्मियों से होने वाले (पाशम्) बन्धन को (शीर्ष्ण, स्रजम्, इव) मस्तक से माला को जैसे उतार देते हैं वैसे ही मैं (प्रति, मुञ्चामि) दूर हटाने की प्रतिज्ञा करता हूँ ॥८॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक-एक आहुति करके आठ आज्याहुति[1] देवें फिर–

चार साधारण आज्याहुति

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम ॥
ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ॥
ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय-इदन्न मम ॥

१. यहाँ पार० गृ० सूत्रकार का मत है कि पाँच आहुतियाँ पूर्व मन्त्रों से दी जावे, गोभि० गृ० प्र० २। का० १। सू० २४ का मत है कि छः आहुतियाँ दी जावें, परन्तु सामवेद मं० ब्रा० प्र० १। खं० १ में ये मन्त्र आठ ही आये हैं, प्रकरण भी एक ही है इससे मूल ग्रन्थकार (महर्षि दयानन्द) ने आठ आहुतियाँ देना लिखा है।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वावादित्येभ्यः-इदन्न मम ॥

ऐसे होम करके वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सम्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वाम हस्त से वधू का दाहिना हाथ चत्ता रखकर ऊपर को ऊँचावे और अपने दक्षिण हाथ से वधू की उठाई हुई दक्षिण हस्तांजलि अंगुष्ठ सहित को चत्ता ग्रहण करे। पश्चात्–

वर-वधू दोनों पाणिग्रहण के ६ मन्त्र बोलें

ओ३म् गृभ्णामि[1] ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥१॥

–ऋ० मन्त्र १०॥ सू० ८५ मन्त्र ३६ ॥

वर कहे–

अर्थ–हे वरानने ! मैं ऐश्वर्य एवं सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये तुम्हारे हाथ को ग्रहण करता हूँ, तुम मुझ पति के साथ जरावस्था को सुखपूर्वक प्राप्त होओ।

कन्या कहे–

हे देव ! मैं भी सौभाग्य की वृद्धि के लिए आपके हस्त को ग्रहण करती हूँ। आप मुझे पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रखिए। आपको मैं और मुझको आप आज से पति-पत्नी का भाव करके

१. 'गृभ्णामि' के ऊपर आपस्तम्ब गृ० सू० खं० ४। सू० १५ में लिखा है कि वधू का हाथ पकड़ कर इन चार मन्त्रों को बोले, परन्तु गोभिल० गृ० सू० प्र० २। क० २। मू० १६ में इन छः मन्त्रों को बोलने का विधान है, तदनुसार यहाँ छः मन्त्र लिखे हैं।

प्राप्त हुए हैं, सकल ऐश्वर्ययुक्त, न्यायकारी, सब जगत् की उत्पत्ति का कर्त्ता, बहुत प्रकार के जगत् का धर्त्ता, परमात्मा और यह सब सभा मण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोग गृहस्थाश्रम कर्म के लिए आपको मुझे और मुझे आपको देते हैं। आज से मैं आपके हाथ और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं। हम कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे ।।१।।

ओ३म् भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्तव ।।२।।

—अथर्व० का० १४। अनु० १। सू० १। मं० ५१।।

वर कहे—

अर्थ—हे प्रिये ! मैं (भगः) ऐश्वर्यरूप (तेः) तुम्हारे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण करता हूँ तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तुम्हारे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण कर चुका हूँ (त्वम्) तुम (धर्मणाः) धर्म से (पत्नी) भार्या (असि) हो और (अहम्) मैं धर्म से (तव) तुम्हारा (गृहपतिः) गृहपति हूँ। हम दोनों मिलके घर के कामों को सिद्ध करें और जो दोनों का अप्रियाचरण (व्यभिचार आदि) है उसको कभी न करें, जिससे घर के सब काम सिद्ध हों तथा उत्तम सन्तान, ऐश्वर्य और सुख की वृद्धि सदा होती रहे ।।२।।

कन्या कहे—

हे देव ! धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक आपके हाथ (आश्रय) को मैंने ग्रहण किया है। अब मैं आपकी धर्मपत्नी और आप मेरे धर्म से गृहपति हैं।

ओ३म् ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् ।।३।।

—अथर्व० का० १४। अनु० १। मं० ५२।।

वर कहे—

अर्थ—हे अनघे ! (बृहस्पतिः) सब जगत् के पालन करने हारे परमात्मा ने जिस (त्व) तुमको (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है (इयम्) यही तुम (मम) मेरी (पोष्या) पोषण करने योग्य पत्नी (अस्तु) हो। (प्रजावति) तुम (मया, पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) शरदृतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त (शं, जीव) सुखपूर्वक जीवन धारण करो।

कन्या कहे—

हे मान्यदेव ! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो। मेरे लिए आपके सिवाय इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी, पालन करने हारा, इष्टदेव कोई नहीं है। न मैं आपसे अन्य दूसरे किसी को मानूँगी। जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करोगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न बर्ताव करूँगी। आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिए ।।३।।

ओ३म् त्वष्टा व्यासो व्यदधाच्छुभेक बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया ।।४।।

—अथर्व० का० १४।। अनु० १ मं० ५३।।

वर बोले—

अर्थ—हे शुभानने ! जैसे (बृहस्पतेः) इस परमात्मा का वृष्टि में उसकी तथा (कवीनाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दम्पती होते हैं। (त्वष्टा) जैसे बिजली सबमें व्याप्त हो रही है वैसे तुम मेरी प्रसन्नता के लिए (वासः) सुन्दर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम्) मुझसे सुख को प्राप्त होओ। इस मेरी और तुम्हारी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात) सिद्ध करे। जैसे (सविता) सकल जगत की उत्पत्ति करने हारा परमात्मा (च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्य युक्त (प्रजया) उत्तम प्रजा से

(इमाम्) इस (नारीम्) मुझ नर की स्त्री को (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करे, वैसे मैं (तेन) इस सबसे (सूर्यामिव) सूर्य की किरण के समान तुम्हें वस्त्र और आभूषणादि से सुशोभित सदा रखूँगा।

कन्या कहे–

सूर्य के समान सुशोभित है प्रिय ! आपको मैं इसी प्रकार अनुकूल प्रियाचरण करके (प्रजया) ऐश्वर्य, वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रखूँगी ॥४॥

5- **ओ३म् इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिमरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥५॥**

–अथर्व० का० १४। अनु० १। मन्त्र ५४॥

वर बोले–

अर्थ–हे मेरे सम्बन्धी लोगों ! जैसे (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि, (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि, (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु, (मित्रा वरुणा) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (उभा) दोनों (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजा का पालन करने हारा राजा (मरुतः) सभ्य मनुष्य (ब्रह्म) सबसे बड़ा परमात्मा और (सोमः) चन्द्रमा तथा सोमलतादि औषधीगण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं जैसे (इमाम्, नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी (अपने शुभाशीर्वाद और मंगल कामनाओं से) (वर्धयन्तु) बढ़ाया करो और मैं भी इस स्त्री को प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूँगा।

कन्या कहे–

मैं भी प्रतिज्ञा करती हूँ कि मेरे पूज्य पति को सदा आनन्द, ऐश्वर्य

और पूजा से बढ़ाया करूँगी तथा हम दोनों परस्पर मिलकर गृहस्थाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करेंगे ॥५॥

6- **ओ३म् अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा, कुलायम् न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् ॥६॥**

–अथर्व० का० १४। अनु० १। सू०। म० ५७॥

वर कहे–

अर्थ–हे कल्याण-क्रोड़े ! जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः) इस तुम्हारे (रूपम्) रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त और इसमें प्रेम द्वारा व्याप्त होता हूँ, वैसे तुम मेरी वधू (मयि) मुझमें प्रेम से व्याप्त होकर अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होओ, जैसे मैं (मनसा) मन से भी तुम्हारे साथ (स्तेयम्) चोरी को (उदमुच्ये) छोड़ देता हूँ और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (नाद्मि) भोग नहीं करता हूँ (स्वयम्) आप (श्रन्थानः) पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी (वरुणस्य) उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता हूँ वैसे (इत्) ही तुम भी किया करो।

कन्या कहे–

देव ! मैं भी इसी प्रकार आपसे बर्त्ताव करूँगी ॥६॥

वर-वधू द्वारा केवल सूचनार्थ दूसरी परिक्रमा

पाणिग्रहण के इन छः मन्त्रों को बोलने के पश्चात् वधू की हस्ताञ्जलि पकड़कर वर उठावे और दोनों यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करें।

तथा वह कलश जो कुण्ड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था, वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था, वर-वधू के साथ-साथ उसी कलश को लेकर चले, फिर-

वह निम्न प्रतिज्ञा बोधक मन्त्र बोले-

ओ३म् अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहं । सामाहममस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै । सह रेतौ दधावहै । प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून् । ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयामशरदः शतम् ।।७।।

–अथर्व० का० १५ अ० २ । म० ७१।।

अर्थ–हे वधू ! जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञानपूर्वक तुम्हारा ग्रहण करने वाला (अस्मि) होता हूँ वैसे (सा) वह (त्वम्) तुम भी ज्ञानपूर्वक मेरी ग्रहण करने हारी (असि) हो । जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुमको (अमः) ग्रहण करता हूँ, वैसे (सा) मेरे द्वारा ग्रहण की हुई (त्वम्) तुम भी मुझको ग्रहण करती हो । (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूँ । हे वधू ! तुम (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशस्ति हो (त्वम्) तुम (पृथ्वी) के समान गर्भादि गृहस्थाश्रम के व्यवहारों को धारण करने हारी हो और मैं (द्यौः) वर्षा करने हारे सूर्य के समान हूँ वह तुम और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नता पूर्वक विवाह करें (सह) साथ मिलकर (रेतः) वीर्य को (दधावहै) धारण करें (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (प्रजनयावहै) उत्पन्न करें (बहुन्) बहुत (पुत्रान्) पुत्रों को (विन्दावहै) प्राप्त होवें । (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) जरावस्था के अन्त तक जीवनयुक्त (सन्तु) रहें (संप्रियौ) अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णुः) एक दूसरे में रुचियुक्त (सुमनस्यमानौ) अच्छे प्रकार विचार करते हुए (शतम्) सौ (शरदः) शरद अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को

प्रेम की दृष्टि से (पश्येम) देखते रहें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष आनन्द से (जीवेम) जीते रहें और (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त प्रिय वचनों को (शृणुयाम) सुनते रहें ।।७।।

शिलारोहण

पश्चात् वर, वधू के पीछे रहकर वधू के दक्षिण और समीप में जा, उत्तराभिमुख खड़ा रहकर वधू की दक्षिणाञ्जलि अपनी दक्षिणाञ्जलि से पकड़कर दोनों खड़े रहें और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश लेकर बैठे । पश्चात् वधू की माता अथवा भाई, जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी (खीलें) जो सूप (छाज) में रखी थीं, उसको बाँये हाथ में लेकर दाहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा कर पत्थर की शिला पर चढ़वावें। और उस समय-

वर निम्न मन्त्र बोले-

ओ३म् आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव । अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ।।१।।

पार० का० १। का० ६।।

अर्थ–हे देवी ! (इमम्, अश्मानम्) इस पत्थर के ऊपर (आरोह) चढ़ और (अश्मा, इव, इस पत्थर के तुल्य (त्वम्) तुम धर्मकार्य में (स्थिरा, भव) दृढ़ होओ । (पृतन्यतः) पूतनां संग्राम मिच्छन्ति पृतन्यन्ति तानम् पृतन्यतः) कलहकारियों को (अभि) आक्रमण करके, दवा करके (तिष्ठ) स्थिर हो और (पृतनायतः-पृतनाभिर्यतन्ते इति पृतनायतस्तान्) समूहों को लेकर लड़ाई के लिये यत्न करने वालों को भी (अव) नीचा करके (बाधस्व) पीड़ित कर-भग्नोद्यम बना ।।१।।

लाजा होम–विवाह का एक मुख्य अंग

फिर वधू वर कुण्ड के समीप आकर पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहाँ वधू दक्षिण ओर रहकर अपनी दक्षिण हस्ताञ्जलि को वर की हस्ताञ्जलि पर रखे फिर वधू की माँ व भाई, जो बाँये हाथ में धाणी का सूप पकड़ कर खड़ा हो वह, धाणी का सूप भूमि पर रखकर अथवा किसी के हाथ में देकर जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्तांजलि है उसमें प्रथम थोड़ा घृत सेचन करने के पश्चात् प्रथम सूप में से दाहिने हाथ की अंजलि से दो बार लेकर वर-वधू की एकत्र की हुई अंजलि में धाणी डालें उसके बाद उस अंजलिस्थ धाणी पर थोड़ा सा घी सेचन करें। तत्पश्चात् वर की हस्तांजलि सहित अपनी हस्तांजलि को आगे से नमाके–

वधू लाजा होम के निम्न तीन मन्त्र बोले–

1- **ओ३म् अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा। इदमर्यम्णे, अग्नये–इदन्न मम ॥१॥**

पार० का० १। कं० ६॥

अर्थ–कन्या की उक्ति–(कन्याः) कन्याएँ (अर्यमणम्) न्यायकारी नियन्ता (अग्निम्, देवम्) जिस पूजनीय देव ईश्वर की (अयक्षन्त) पूजा करती हैं (सः) वह अर्यमा, देवः न्यायकारी दिव्य स्वरूप परमात्मा (नः) हमको (इतः) इस पितृकुल से (प्र, मुञ्चतु) छुड़ावे और (पतेः) पति के साहचर्य से (मा) न छुड़ावे ॥१॥

2- **ओ३म् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा। इदमग्नये–इदन्नं मम ॥२॥**

पार० का० १। कं० ६

अर्थ–(लाजान्) भुने हुए चावल खीलों को (आ, वपन्तिका) अग्नि में छोड़ने वाली (इयं, नारी) यह स्त्री (उप, ब्रूते) पति के समीप कहती है कि (मे, पतिः) मेरा पति ईश्वर कृपा से (आयुष्मान्, अस्तु) दीर्घजीवी हो और (मम) मेरे (ज्ञातयः) कुटुम्ब के लोग (एधन्ताम्) धनधान्यादि से बढ़ें ॥२॥

3- **ओ३म् इमान् लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यातामियꣳ स्वाहा। इदमग्नये–इदन्न मम● ॥३॥**

–पार० का० १। कं० ६॥

अर्थ–हे पते! (इयम्) यह मैं (तव) आपकी (समृद्धिकरणम्) वृद्धि के लिए (इमान्, लाजान्) इन खीलों को अग्नि में (आ, वपामि) छोड़ती हूँ। (मम) मेरा (तुभ्यम्, च) और आपका (सं, वननम्,) परस्पर अनुराग हो (तत्) उसमें (अग्निः) पूजनीय परमात्मा (अनु, मन्यताम्) सहायक हो ॥३॥

इन उपरोक्त तीन मन्त्रों में से एक-एक मन्त्र को वधू बोलकर एक-एक बार थोड़ी-थोड़ी धाणी की आहुति तीन बार प्रज्ज्वलित ईंधन पर देवे, फिर–

● जहाँ-जहाँ विवाह की पूर्वविधि में पता नहीं दिया है वहाँ-वहाँ यह समझ लेना चाहिए कि यह मूलग्रन्थोक्त समस्त विधि, पार० गृ० सू० प्रथम काण्ड तथा उसके भाष्यानुसार है।

वर द्वारा हस्ताञ्जलि पकड़ने का मन्त्र

ओ३म् सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति । यान्त्व विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रत । यस्यां भूतं समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । तामद्य गाथां गास्यासि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥१॥

–पार० का० १। क० ७॥

अर्थ–(सुभगे) सुन्दर ऐश्वर्य वाली ! (वाजिनीवति) अन्नादि सन्तति वाली ! हे (सरस्वति) वाणी आदि पदार्थों को कारणीभूत प्रकृति! (इदम्) इस हवनादि कर्म की (प्र, अव) अच्छे प्रकार रक्षा कर । (अस्य, विश्वस्य, भूतस्य) इस दृश्यमान् सब पृथिव्यादि की (याम्, त्वा) । जिस तुझको (अग्रतः) स्थूल सृष्टि के पूर्व कारण रूप से विद्यमान् (प्रजायाम्) उत्पादन करने वाली, विद्वान लोग कहते हैं । (यस्याम्) जिस तुझ में (इदम्, विश्वम्, जगत्) यह सब जगत् ही उत्पन्न होकर विद्यमान हैं (अद्य) आज से (ताम्) उसी तेरे प्रति (गाथाम्) गुण प्रभाव स्तुति का (गास्यामि) गान किया करूँगा (गा) जो गाथा सुनने पर (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के लिए (उत्तमम्, यशः) अच्छी कीर्ति को देगी ॥१॥

इस (उपर्युक्त) मन्त्र को बोलकर अपने दाहिने हाथ का हस्ताञ्जलि से वधू की हस्ताञ्जलि पकड़कर–

वर द्वारा परिक्रमा के दो मन्त्र–

ओ३म् तुभ्यमग्रे पर्यवहन्यन्त्सूर्या वहतु ना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दाग्ने प्रजया सह ॥१॥ पार० गृ० सू० का० १। क० ७। सू० ३। ऋ० मं० १०। सू० ८५ मं० ३८॥

अर्थ–हे (अग्ने) पूजनीय परमात्मन् ! (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए–तुम्हारी ही परिचर्या के लिए (अग्रे, परि, अवहन्) पूर्व व प्रधान रूप से इस कन्या

को स्वीकार किया है, यह कन्या (सूर्याम्) सूर्य की दी हुई शोभा को (वहतु) प्राप्त हो और (सह) साथ ही (ना) इसका पति रूप–पुरुष में भी प्रतिष्ठादिजन्य शोभा को प्राप्त होवें । (पुनः) कालान्तर में (प्रजया, सह) पुत्रों के साथ (पतिभ्यः) मुझे पति के लिये (बहुवचनमार्षम्) (जायाम्) भार्यात्व को प्राप्त हुई इस कन्या को (दाः) दीजिये (सन्धिरार्षः) ॥१॥

ओ३म कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमपदीक्षामयष्ट । कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः ॥२॥

–गो० गृ० सू० प्र० २। का० १ सू० ८॥ मं० ब्रा० १।२।५।

अर्थ–(कन्यला) यह कन्या (पितृभ्यः) पिता भ्राता आदि को (अप) छोड़कर (पतिलोकम्) पति के गृह के प्रति (पतीयम) पति सम्बन्धी (दीक्षाम्) नियम को (अयष्ट) स्वीकार कर चुकी है । (उत) और (कन्या) यह कन्या (त्वया) उससे भिन्न मुझ पति व्यक्ति के साथ ही सर्वदा रहे, जिससे कि (वयम्) हम मिलकर (उदन्याः, धारा, इव) जल की वेग वाली धाराओं की नाईं, जल की जैसे प्रबल धाराएँ अपने सम्मुख आने वाले तृणादि को दबा कर बहा ले जाती है वैसे ही (द्विषः) कामादि शत्रुओं को (अति) उल्लंघन करने के पश्चात् (गाहेमहि) विलोडन करें, दबावें ॥२॥

चार परिक्रमायें

पहली तीन परिक्रमाओं में वधू आगे रहेगी और चौथी परिक्रमा में वर आगे रहेगा

इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञ-कुण्ड की एक प्रदक्षिणा करके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोडी देर दोनों खड़े रहें

१. लाजा होम के पीछे की इन्हीं परिक्रमाओं को 'मंगल फेरा' 'भाँवर' कहते हैं और ऐसे चार फेरे होते हैं ।

और सब मिलकर चार परिक्रमा करें। अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा खड़ा रहकर उक्त रीति से चार बार क्रिया पूरी होने के पश्चात् यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके उसके पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वधू-वर खड़े रहें। तत्पश्चात् वधू की माँ अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उसमें बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जलि में डाल देवें।

तत्पश्चात् वधू-

ओ३म् भगाय स्वाहा। इदं भगाय-इदन्न मम ॥

पार० गृ० सू० क० ७। सू० ५॥

अर्थ-(भगाय) ऐश्वर्य के लिए ॥

इस मन्त्र को बोलकर प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवें[1] तत्पश्चात् वधू को दक्षिण भाग में रखकर कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठकर-

वर निम्न आहुति दे-

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्न मम

पार० गृ० सू० १ क० २। ७ सू० ५॥

अर्थ-(प्रजापते) प्रजा के पति-परमात्मा के लिए ॥ इस मन्त्र को बोलकर स्रुवा से एक घृत की आहुति देवें।

---

१. पुनः इसी प्रकार दो परिक्रमायें करें। शिलारोहण, लाजाहोम, हस्ताञ्जलि तथा परिक्रमा के मन्त्र प्रत्येक फेरे के समय पढ़ने चाहिए। चौथी परिक्रमा के पूर्व वधू केवल 'भगाय स्वाहा' की आहुति दे। चौथी परिक्रमा दोनों चुपचाप करें। पहली तीन परिक्रमाओं में वधू आगे चलेगी, चौथी में वर आगे रहेगा।

केश मोचन

तत्पश्चात् एकान्त में जाकर वधू के बँधे हुए केशों को-

वर दो मन्त्र• बोलकर खोले-

ओ३म् प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टान्त्वा सहपत्या दधामि ॥

-ऋ० म० १०। सू० ८५। ३० २५

अर्थ-हे वधू! (येन) जिस बन्धन से (सुशेवः) शोभन सुख-सम्पन्न (सविता) उत्पादक मातृजन (त्वा) तुम्हें (अबध्नात्) बाँध चुका है (वरुणस्य, पाशात्) उसी श्रेष्ठ स्त्री जन के लिए केशों के बन्धन से (त्वा) तुम्हें (प्र, मुञ्चमि) अच्छे प्रकार छुड़ाता हूँ और (ऋतस्य, योनौ) यज्ञ के स्थान में और अन्य (सुकृतस्य) सुन्दर कार्यों के (लोके) स्थान में (अरिष्टाम्, त्वा) उपद्रव रहित करके तुम्हें (पत्या, सह) मैं पतिभाव के साथ (दधामि) पोषण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ ॥१॥

ओ३म् प्रेतो मुञ्चामि नामु स्सुबद्धाममुतस्करम्। यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सति ॥२॥ विवाहोमे आश्वलायनगृह्य-कारिका १८-१६ ॥

-ऋ० मं० १० सू० ५८ ॥ मन्त्र २५ ॥

अर्थ-हे (इन्द्र!) (मीढ्वः) ऐश्वर्य बोले-वीर्य सेक्ता विवाहित पुरुष! (यथा) जैसे (इयम्) यह कन्या (सुभगा) अच्छे ऐश्वर्य वाली

● इन दो मन्त्रों से आश्वलायन गृह्यकारिकाकार केशों का खोलना ही मानते हैं, अतः ऐसा मत है।

और (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्र वाली (सति) हो, वैसे ही कर तथा प्रतिज्ञा कर कि हे कन्ये ! (इतः) इस पितृकुल से तुझे (प्र, मुञ्चामि) छुड़ाता हूँ (अमुतः) उस पति के घर से (न) नहीं छुड़ाता किन्तु (अमुतः) इस पतिगृह के साथ तो तुझे (सुबद्धाम्) अच्छे प्रकार सम्बद्ध (करम्) कर चुका हूँ ।।२।।

विवाह का अन्तिम प्रधान अंग
सप्तपदी एवं ग्रन्थि-बन्धन

तत्पश्चात् सभा मण्डप में आकर सप्तपदी विधि का प्रारम्भ करें । इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गाँठ देनी, इसे जोड़ा कहते हैं । वधू-वर दोनों आसन से उठकर वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्तांजलि पकड़कर यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जाये। तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्ध पर रखकर दोनों समीप उत्तराभिमुख खड़े रहें तत्पश्चात्-

वर कहे-

ओ३म् मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम ।।

—गोभि० गृ० प्र० २। का० २। सू० १३।।

अर्थ- हे वधू ! (सव्येन) बायें पैर से (दक्षिणम्) दाहिने पैर को (मा, अतिक्राम) मत उल्लंघन कर अर्थात् आगे बाँए पाद को मत रख ।

ऐसा बोलकर वधू को उसका दक्षिण पग उठवाकर चलने के लिए आज्ञा दें और वर-

१- **ओ३म् इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ।।**

—पार० का० ५ क० ८।।

अर्थ- हे कन्ये ! (इषे) अन्नादि के लिए तुम (एकपदी, भव) एक पैर चलने वाली हो और (सा) वही तुम (माम्) मेरे (अनु, व्रता) अनुकूल हो, तुम्हारी अनुकूलता सम्पादन के निमित्त (विष्णुः) व्यापक परमात्मा (त्वा) तुम्हें (आ, नयतु) अच्छे प्रकार प्राप्त करे । हम तुम दोनों मिलकर (बहून, पुत्रान्, विन्दावहै) बहुत से पुत्रों को लाभ करें और (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) वृद्धावस्थापर्यन्त जीने वाले (सन्तु) हों ।।

इस मन्त्र को बोलकर वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान● दिशा में एक पग+ चले और चलावे ।

२- **ओ३म् ऊर्जे द्विपदी भव + ।।** इस मन्त्र से दूसरा ।

अर्थ- (ऊर्जे) बल-सम्पादन के लिये (द्विपदी) दो पैर व दूसरा पैर चलने वाली ।।

३- **ओ३म् रायस्पोषाय त्रिपदी भव० ।** इस मन्त्र से तीसरा ।

● आश्वलायन गृह्यकारिका (विवाह, होम प्रयोग) २० ।

+ इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा (दायाँ) पग उठाकर ईशानकोण की ओर बढ़ाकर रखे । तत्पश्चात् दूसरे बाँये पग को उठाकर जमणे पग की पटली तक धरे अर्थात् जमणे पग के थोड़ा सा पीछे बाँया पग रहे, इसी को एक पगला गिनना । इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों से भी क्रिया करे अर्थात् एक-एक मन्त्र से यही क्रिया करें अर्थात् एक-एक मन्त्र से एक-एक पग ईशान दिशा की ओर धरे ।

+ जो 'भव' के आगे पूर्व मन्त्र में पाठ है सो छः मन्त्रों के इस 'भव' पद के आगे पूरा बोलकर पग रखने की क्रिया करें ।

अर्थ—(रायस्पोषाय) धन व ज्ञान की पुष्टि के लिये (त्रिपदी) तीन पैर चलने वाली० ॥

४- **ओ३म् मयोभवाय चतुष्पदी भव० ॥** इस मन्त्र से चौथा ।

अर्थ—(मयोभवाय) मयः सुखम्=सुख की उत्पत्ति के लिये (चतुष्पदी) चौथा पैर चलने वाली ॥

५- **ओ३म् प्रजाभ्यः पंचपदी भव ॥** इस मन्त्र से पाँचवां ।

अर्थ—(प्रजाभ्यः) सन्तानों के पालन के लिये (पंचपदी) पाँचवां पैर चलने वाली ।

६- **ओ३म् ऋतुभ्यः षट्पदी भव ॥** इस मन्त्र से छठा और—

अर्थ—(ऋतुभ्यः) ऋतुओं के अनुकूल, व्यवहार संपादन के लिए (षट्पदी) छठा पैर चलने वाली ।

७- **ओ३म् सखे सप्तपदी भव० ॥**

पार० का० १। क० ८॥

अर्थ—(सखे) यह वधू के लिये सम्बोधन है । हे मित्रवत् वर्तमान्! मित्रता सम्पादन के लिये (सप्तपदी) सात पैर चलने वाली । शेष पूर्ववत् सातों मंत्रों में जान लेना चाहिये । (कही सप्तपदी) ऐसा पाठ मिलता है ।)

इस मन्त्र से सातवाँ पागला चलना । इस रीति से सात पग ईशान दिशा में चलकर वधू-वर दोनों गाँठ बाँधे हुये शुभासन पर बैठें । तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को लेकर यज्ञ कुण्ड की दक्षिण की ओर बैठाया था वह पुरुष उस पूर्वस्थापित जलकुम्भ को लेकर वधू-वर के समीप आये और उसमें से थोड़ा-सा जल लेकर वर-वधू के मस्तक पर छिड़के और—

वर द्वारा निम्न चार मन्त्रों का पाठ—

१- **ओ३म् आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षषे ।१।**

—ऋ० मं० १०। सू० ९। मं० १॥

अर्थ—हे जल ! जिससे कि तुम सुख देने वाले होते हो अतः वैसे तुम हमको अन्न के लिये धारण करो और बड़े रमणीय दर्शन के लिये हमें धारण करो ॥१॥

२- **ओ३म् यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाज यतेह नः उशतोरिव मातरः ॥२॥**

—ऋ० मं० १०। सू० ९। मं० २॥

अर्थ—हे जल ! तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी रस है उसे हमें इस लोक में प्राप्त कराओ । पुत्र समृद्धि को चाहने वाली माताएँ जैसे अपने स्तन के रस को सेवन कराती हैं वैसे ही तुम भी प्राप्त कराओ ॥२॥

३- **ओ३म् तस्माऽअरंगमाम वौ यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥**

—ऋ० मं० १०। सू० ९। मं० ३।

अर्थ—हे जलो ! जिस अन्न के निवास के लिये तुम औषधियों को तृप्त करते हो उसी अन्न के लिए हम पर्याप्त रूप से तुम्हें प्राप्त करते हैं और तुम हमको पुत्र पौत्रादि के उत्पादन करने में प्रयुक्त करो ॥३॥

४- **ओ३म् आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥४**

अर्थ—(आपः) जो जल (शिवाः) कल्याण के हेतु भूत हैं (शिवतमाः) अत्यन्त अभ्युदयकारी हैं (शान्ताः) सुख पहुँचाने वाले हैं,

(शान्ततमाः) अधिक सुख देने वाले हैं, (ताः) वे जल (ते, भेषजम्) तुम्हारी निरोगता को (कृण्वन्तु) करें ।।४।।

इन चार मन्त्रों को वर बोले । तत्पश्चात् यहाँ से उठकर–

वर-वधू सूर्यावलोकन कर यह मन्त्र पढ़ें–

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरद शतात् । –य० अ० ३६। मं० २४।।

अर्थ–हे सूर्यवत् प्रकाश स्वरूप परमेश्वर । आप विद्वानों के हितकारी, शुद्ध नेत्र तुल्य सबके दिखाने वाले, अनादि काल से सबके ज्ञाता हैं । उस आपको हम सौ वर्ष तक ज्ञान द्वारा देखें और आपकी कृपा से सौ वर्ष तक हम जीवें । सौ वर्ष तक शास्त्रों को सुनें, सौ वर्ष पर्यन्त ज्ञान देवें, सौ वर्ष तक दीनता रहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें सुनें और अदीन रहें ।

इस मन्त्र को पढ़कर सूर्य का अवलोकन करें । तत्पश्चात् वधू के दक्षिण स्कन्ध पर से अपना दक्षिण हाथ लेकर उससे वधू का

हृदय स्पर्श करके वर कहे•

ओ३म् मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ।

–पार० का० २। क० २।।

● वैसे ही वधू करे और कहे–हे प्रिय स्वामिन् ! आपका हृदय, आत्मा और अन्तःकरण मेरे प्रियाचरण कर्म में धारण करती हूँ । मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे । आप एकाग्र होकर मेरी वाणी को–जो कुछ मैं आपसे कहूँ उसका, सेवन सदा किया कीजिये क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आपको मेरे अधीन किया है, जैसे मुझको आपके अधीन किया है । अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनूकूल दोनों वर्त्ता करें जिससे सर्वदा आनन्दित और कीर्तिमान् पतिव्रता और पत्नी व्रती होकर सब प्रकार के व्यभिचार अप्रिय भाषणादि को छोड़कर परस्पर प्रीतियुक्त रहें ।

अर्थ–हे वधू ! (ते) तुम्हारे (हृदयम्) अन्तःकरण और आत्मा को (मम) मेरे (व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि) धारण करता हूँ (मम) मेरे (चित्तमनु) चित्त के अनुकूल (ते) तुम्हारा (चित्तम्) चित्त सदा (अस्तु) रहे (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तुम (एकमनाः) एकाग्रचित्त से (जुषस्व) सेवन किया करो (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा (त्वा) तुमको (मह्यम्) मेरे लिये (नियुनक्तु) नियुक्त करे ।

पश्चात् उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले ।

ओ३म् सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत् । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथाऽस्तं विपरेतन ।

ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३३।।

तत्पश्चात् वधू के मस्तक पर हाथ रखकर वर•–

अर्थ–हे विद्वान् लोगों ! (इयम्, वधूः) यह वधू (सुमुंगलीः) (छाँदसो विसर्गः) शोभन्, मंगलस्वरूप है, अतः इस कन्या के साथ (समेत) मेल रखो और (इमाम्) इसको मंगल दृष्टि से (पश्यत) देखो और (अस्य) इसके लिये (सौभाग्यम् दत्वा) आशीर्वाद देकर (अस्तम्) अपने-अपने वर के प्रति (याथ) जाओ और (न, वि, परा, इत) विशेष रूप से परांग मुख होकर न जाओ किन्तु पुत्रादि के मंगल की आशा से फिर भी आने के लिये, जाओ ।।

इस मन्त्र को बोलकर कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करें और–

इस समय सब लोग निम्न आशीर्वाद दें–

ओ३म् सौभाग्यमस्तु । ओ३म् शुभं भवतु ।।

● लोक-व्यवहार में इस मन्त्र से वर-वधू की सिन्दूर से माँग भरता है । इसे 'सुमंगलीकरण' की विधि कहते हैं ।

अर्थ–(सौभाग्यम्) धनधान्यादि संपन्नता (अस्तु) हो, (शुभम्) कल्याण (अस्तु) हो ।

तत्पश्चात् यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठकर वधू-वर दोनों (ओ३म् यदस्य कर्मणो०) इस स्विष्टकृत् मन्त्र से एक आज्याहुति दें और–

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा ।।१।। ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा ।।२।। ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा ।।३।। ओ३म् भुर्भूवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।४।।

इत्यादि चार मन्त्रें से वर-वधू दोनों आज्याहुति दें । इस प्रमाणे विवाह की विधि पूरे हुए पश्चात् दोनों जने विश्राम करें ।

पूर्व विधि समाप्तम्

उत्तर विधि

इस रीति से थोड़ा सा विश्राम करके विवाह की उत्तर विधि करें । यह उत्तर विधि वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके जहाँ एक घर प्रथम बना रखा हो, वहाँ जाकर करनी । तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुये पीछे आकाश में नक्षत्र दीखे उस समय वधू-वर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठे और अग्न्याधान (ओ३म् भुर्भूवः स्वः द्यौ.) इस मन्त्र से करें, यदि प्रथम ही सभा-मण्डप ईशान दिशा में हो और प्रथम अग्न्याधान किया हो तो अग्न्याधान न करें, पश्चात् (ओ३म् अयन्त इध्म०) इत्यादि चार मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब–

1. ओ३म् अग्नये स्वाहा ।।

इत्यादि चार मन्त्रों से आघारावाज्यभागाहुति चार और

2. ओ३म् सोमाय स्वाहा ।।
3 ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ।।
4. ओ३म् इन्द्राय स्वाहा

1. **ओ३म् भूरग्नये स्वाहा ।।** 2. ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा
3. ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा 4. ओ३म् भुर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा

इत्यादि चार मन्त्रों से चार व्याहृति आहुति ये सब मिलकर आठ आज्याहुति देवें, तत्पश्चात्–

उत्तर विधि का प्रधान होम निम्न मन्त्रों से करें–

1- **ओ३म् लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते । तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा । इदं कन्यायै–इदन्न मम ।।१।।**

–सा० मं० ब्रा० मं० १।।

अर्थ–हे कन्ये ! (लेखासन्धिषु) रेखा-मस्तकादि रेखाओं की सन्धियों में (पक्ष्मसु) नेत्रों के लोमों में (च) और (आरोकेषु) नाभि-रन्ध्रादिकों में (ते) तुम्हारे (यानि) जो बुरे चिह्न होंगे (ते, सर्वाणि, तानि) तुम्हारे उन सबों को (पूर्णाहुत्या) इस पूर्णाहुति के द्वारा (अहम्) मैं पति (शमयामि) शमन करने की प्रतिज्ञा करता हूँ ।।१।।

2 - **ओ३म् केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत्। तानि०।२।**

–मं० ब्रा० मं० २।।

अर्थ–(यन् च) और जो (केशेषु) बालों में (पापकम्) बुराई होगी। (ईक्षिते) देखने के सम्बन्ध में (यत्, च) और जो (उदिते) चलने-फिरने में बुराई होगी उस सबको शेष पूर्ववत् ।।२।।

3 **ओ३म् शीलेषु यच्चपापकं भाषिते हसिते च यत् ।। तानि० ।।३।।**

अर्थ–(यत्, च) और जो (शीलेषु) स्वभाव या व्यवहारों में (यत्, च) और (भाषिते, हसिते) बोलने और हँसने में (पापकम्) बुराई होगी। शेष तुल्य० ।।३।।

ओ३म् आराकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् ॥ तानि० ॥४॥

अर्थ–(च) और (आरोकेषु) दाँतों के बीच में (दन्तेषु) दाँतों में (यत्, च) और जो (हस्तयोः पादयोः) हाथ और पैरों में जो बुराई होगी। शेष तुल्य० ॥४॥

ओ३म् ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते । तानि० ॥५॥

अर्थ–(ऊर्वोः) जाँघों में (उपस्थे) गोपनीय इन्द्रिय में (जंघयोः) घुटनों में (च) और (सन्धानेषु) अन्यान्य सन्धि स्थानों में जो बुराई होगी। शेष तुल्य० ॥५॥

ओ३म् यानि कानि च घोराणि सर्वांगेषु तवाभवन् । पूर्णाऽहुतिभिरा यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥६॥ इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥

–गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ३। सू० ६॥ सा मं० ब्रा० प्र० १। ख० ३ मं० १-६ ॥

अर्थ–(च) और हे कन्ये ! (तव, सर्वांगेषु) तुम्हारे सब अंगों में (यानि कानि) जो कोई (घोराणि) बुराई या कमी (अभवन् हो चुकी या होगी (आज्यस्य, पूर्णाहुतिभिः) इस घृत की पूर्णाहुतियों की प्रसिद्धि के साथ (तानि, सर्वाणि) उन सब बुराई या कमियों को (अशीशमम्) शान्त कर चुकने की प्रति कर चुका, ऐसा समझ ॥६॥ (इन मन्त्रों में यज्ञ-हवन से रक्त शुद्धि का कैसा स्पष्ट उल्लेख है, यह द्रष्टव्य है ।) ये छः मन्त्र हैं, इनमें से एक-एक से छः आज्याहुति देनी, फिर–

चार व्याहृति आहुति

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥
ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥२॥
ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदन्न मम ॥३॥
ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः स्वाहा । इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम ॥४॥

इत्यादि चार व्याहृति मन्त्रों से चार आज्याहुति देकर, वहाँ से उठकर सभा मण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जाकर वधू-वर–

ध्रुव तथा अरुन्धती दर्शन करें–

ध्रुवं पश्य । अर्थ–(ध्रुवम्) ध्रुव को (पश्य) देखो । वर ऐसा बोलकर वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे और वधू-वर से बोले कि मैं–

पश्यामि ॥ अर्थ–ध्रुव के तारे को देखती हूँ। तत्पश्चात् वधू निम्न वाक्य कहे–

ओ३म् ध्रुवमसि ध्रुवाऽहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य● असौ)

–गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ३। सू० ६॥

● (अमुष्य) इस पद के स्थान में षष्ठी विभक्त्यन्त पति का नाम बोलें जैसे शिवशर्मा पति का नाम हो तो "शिवशर्मणः" ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमाविभक्त्यन्त बोलकर इस वाक्य को पूरा बोले । जैसे 'सौभाग्दाऽहं शिवशर्मणस्ते०" । हे स्वामिन् ! सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्मा की अर्द्धांगनी (पतिवुले) आपके कुल में (ध्रुवा) निश्चल हूँ, जैसे कि आप (ध्रुवम्) दृढ़ निश्चयवाले मेरे स्थिर पति (असि) हैं वैसे मैं भी आपकी स्थिर दृढ़ पत्नी (भूयासम) होऊं ।

अर्थ–हे ध्रुव नक्षत्र ! (ध्रुवम्, असि) तुम निश्चल हो वैसे ही (अहम्) मैं (पतिकुले) पति के कुल में (ध्रुवा) निश्चल (भूयासम्) ईश्वर करे कि होऊँ ॥

तत्पश्चात् वर कहे–

अरुन्धतीं पश्य ।

अर्थ–(अरुन्धतीम्) अरुन्धती को (पश्य) देखो ।

ऐसा वाक्य बोलकर वर अरुन्धती का तारा दिखलाये और वधू कहे–**पश्यामि ।**

अर्थ–देखती हूँ । ऐसा कहकर वधू पुनः कहे–

ओ३म् अरुन्धत्यसि रुद्धाऽहमस्मि (अमुष्य, असौ)

–गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ३ सू० १०-११ ॥

अर्थ–(अरुन्धति) अरुन्धति तारे ! जैसे तू सप्तर्षि नामक तारों के निकट सर्वदा (रुद्धा) रुका रहता है, वैसे मैं भी अमुक नामवाली, अमुक की पत्नी, अपने पति के नियम में रुक गई–बँध गई ।

पारस्कर के मत में एक ध्रुव ही दिखाया जाता है गोभिल, ध्रुव और अरुन्धती दोनों को दिखलाना मानते हैं । मानव गृह्यसूत्रकार ध्रुव, अरुन्धती और सप्त ऋषियों का भी दिखलाना मानते हैं ।

पश्चात् वधू की ओर देखकर और वधू के मस्तक पर हाथ रखकर निम्न दोनों मन्त्रों को वर बोले–

१- **ओ३म् ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा विश्वमिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् ॥**

–सा० मं० ब्रा० प्र० १। ख० ३मं० ७॥

अर्थ–हे वरानने जैसे (द्यौः) सूर्य की कान्ति व पृथिव्यादि में निश्चलता है, जैसे (पृथ्वी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर है, जैसे

(इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाह स्वरूप में स्थिर है, जैसे (इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम्) यह तुम मेरी स्त्री (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवा) सदा स्थिर रहो।

२- **ओ३म् ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वाऽदात् । बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥**

–पार० गृ० सू० का० १। क० ८। सू० १६॥

अर्थ–हे स्वामिन् ! जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ संकल्प करके स्थिर (असि) हैं या जैसे मैं (त्वा) आपको (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूँ वैसे ही सदा के लिये मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आपको (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है, वैसे मुझे पत्नी के साथ उसमें प्रजायुक्त होकर (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (सम् जीव) अच्छे जीविये । तथा हे वरानने पत्नी ! (पोष्ये) धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझे पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रहो । (मह्यम्) मुझको अपनी इच्छा के अनुकूल तुम्हें परमात्मा ने दिया है । तुम (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण करो । वधू-वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिससे कभी उल्टे या विरोध में न चलें ।

तत्पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख होकर कुण्ड के समीप बैठें और–

वर-वधू दोनों तीन आचमन करें–

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥
ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥
ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम् स्वाहा ॥३॥

विशेष भात का होम

तत्पश्चात् समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावें और 'ओ३म् अयन्त इध्म०' इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों (वर-वधू) करके पश्चात् 'ओ३म् अग्नये स्वाहा' आदि आघारावाज्यभागाहुति चार और 'ओ३म् भूरग्नये स्वाहा' आदि व्याहृति चार दोनों मिलकर आठ आज्याहुति वर-वधू दें। फिर जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात है उसको एक पात्र में निकाल कर उसके ऊपर स्रुवा से घृत सेवन कर, घृत और भात को अच्छे प्रकार से मिलाकर दाहिने हाथ से थोड़ा-थोड़ा भात दोनों लोगलेकर स्थालीपाक (भात) की निम्न चार आहुति देवें।

1- **ओ३म् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये–इदन्नं मम ॥१॥**

अर्थ–अग्नि के लिए सुहुत हो ॥१॥

2- **ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये–इदन्न मम ॥२॥**

अर्थ–प्रजाओं के पालन के लिए सुहुत हो ॥२॥

3- **ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः–इदन्नं मम ॥३॥**

अर्थ–समस्त देवों के लिये सुहुत हो ॥३॥

4- **ओ३म् अनुमतये स्वाहा । इदमनुमतये–इदन्न मम ॥४॥**

–पार० गृ० सू० का० १। क० १२। सू० ३॥

अर्थ–अनुकूल मति वाले के लिए सुहुत हो ॥४॥

फिर (ओ३म् यदस्य, कर्मणो०) इस मन्त्र से एक स्विष्टकृद् आहुति देनी। फिर 'ओ३म् भूरग्नये' आदि व्याहृति आहुति चार और 'ओ३म् त्वन्नो

अग्ने वरुणस्य' आदि अष्टाज्याहुति आठ इस प्रकार–बारह आज्याहुति देनी, फिर शेष बचा हुआ भात एक पात्र में निकाल कर उस पर घृत सेचन कर और दाहिने हाथ में रखकर–

वधू-वर का सहभोजन

1- **ओ३म् अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते ॥१॥**

–मं० ब्रा० मं० ८॥

अर्थ–हे वधू व वर ! (अन्नपाशेन) अन्न है पाश-बन्धन जिसका ऐसे (मणिना) रत्नतुल्य (पृश्निना) शरीरान्तवर्ती छोटे से (प्राणसूत्रेण) प्राणरूपी सूत से (सत्यग्रन्थिना) सचाई की गाँठ लगाकर (ते) तुम्हारे (हृदयम्) हृदय (च) और (मनः) मन को (बध्नामि) बाँधती व बाँधता हूँ ॥१॥

2- **ओ३म् यदेतद् हृदय तव तदस्तु हृदय मम । यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ॥२॥**

–मं० ब्रा० १। ३। ६॥

अर्थ–हे स्वामिन् व हे पत्नी ! (यदेतद्) जो यह (तव) तुम्हारा (हृदयम्) आत्मा-अन्तःकरण है (तत्) वह (मम) मेरे (हृदयम्) आत्मा एवं अन्तःकरण के तुल्य प्रिय (अस्तु) हो, और (मम) मेरा (यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा, प्राण और मन है (तत) वह (तव) तुम्हारे (हृदयम्) आत्मादि के लिये प्रिय (अस्तु) सदा रहे ॥२॥

3- **ओ३म् अन्नं प्राणस्य षड्विंशस्तेन बध्नामि त्वा असौ ॥३॥**

– सा० मं० ब्रा० प्र० १। ख० ३। मं० १०॥

अर्थ—(असौ) हे यशोदे वधू ! जो (प्राणस्य) प्राण का पोषण करने हारा (षड्विंशः) छब्बीसवाँ तत्व (अन्नम) अन्न है (तेन) उससे (त्वा) तुमको (बध्नामि) दृढ़ प्रीति से बाँधता व बाँधती हूँ ।।३।।

कहीं 'षड्विंशः' ऐसा पाठ है षड्विंश का अर्थ भी बन्धन है ।

इन (उपर्युक्त) तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम थोड़ा सा भक्षण करके जो शेष भात रहे वह अपनी वधू के लिये खाने को दे, और जब वधू उसको खा चुके तब वधू-वर यज्ञ मण्डप में सन्नद्ध हुए शुभासन पर नियम से पूर्वाभिमुख बैठें और सामवेदोक्त महावामदेव्यान कर तत्पश्चात् ईश्वर की स्तुति आदि कर्म करके क्षारलवण रहित, मिष्ट, दुग्ध, घृतादिसहित भोजन करें । फिर पुरोहितादिसद्धर्मी और कार्यार्य इकट्ठे हुए लोगों को सम्मानार्थ उत्तम भोजन करना, तत्पश्चात् यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार करके विदा कर देवें ।

फिर दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक्-पृथक् स्नान में भूमि पर बिछौना करके● तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रहकर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे । तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधान संस्कार करें । यदि चौथे दिवस कोई अड़चन आये तो अधिक दिन ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ रहें फिर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और शास्त्रोक्त गर्भाधान की रात्रि भी हो उस रात्रि में यथा विधि गर्भाधन करें ।

वर का अपने यहाँ जाना

दूसरे व तीसरे दिन प्रातःकाल वर पक्ष वाले लोग वधू और वर को रथ में बैठाकर बड़े सम्मान से अपने घर में लायें और जो वधू अपने माता-पिता के घर को छोड़ते समय आँख में अश्रु भर लावे तो—

१. देखो-पार० गृ० सू० क० १। क० ८। सू० २१।।

+ ओ३म् जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः । वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४०। ३मं० १०।

अर्थ—हे विद्वान् लोगों ! (ये, नरः) जो मनुष्य पति रूप में (जीवम्, रुदति) स्त्रियों के जीवन सुधारने के उद्देश्य से कष्ट उठाते हैं और अपनी स्त्रियों को (अध्वरे) यज्ञ में (वि, मयन्ते) प्रवेश कराते हैं और (दीर्घाम्, प्रसितिम्) लम्बे गृहस्थाश्रम के श्रेष्ठ बन्धन को (अनुदीधियुः) अनुकूल व्यवहार में लाते हैं और जो पितृभ्यः) अपने माता-पिताओं की सेवा के लिये (इदम्, वामम्) इस सुन्दर अपत्य (पत्नी) को (सम्, एरिरे) अच्छी तरह प्रेरित करते हैं, उन्हीं (पतिभ्यः) पतिरूप पुरुषों के लिये (जनयः) जायाएं (परिष्वजे) आलिंगन के लिये (मयः) सुख को करती हैं ।

इस उपर्युक्त मन्त्र को वर बोले और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे, उस समय वर—

ओ३म् पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।

—ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० २६।।

अर्थ—हे कन्ये ! (इतः) यहाँ से (हस्तगृह्य) पकड़ने योग्य हैं हाथ जिसका ऐसा (पूषा) पोषण करने वाला यह पति (नयतु) घर को पहुँचायेगा । और (अश्विना) वेग वाले दो घोड़े व घोड़े वाले (रथेन) रथ से-बग्घी से (त्वा) तुम्हें (प्र, वहताम्) अच्छे प्रकार ले जावे । तुम

+ 'जीवं रुदन्ति' इस मन्त्र से लेकर 'इहप्रियं' इस मन्त्र तक जो-जो जिस मन्त्र में विधि लिखी है, वह सब भट्ट कुमारिल स्वामीप्रणीत आश्वलायन गृह्यकारिका के 'गृहप्रवेश प्रकरण' के अनुसार हैं ।

(गृहान्) अपने पति के घर को (गच्छ) जाओ (यथा) जैसे कि तुम (गृहपत्नी) घर की स्वामिनी (असः) हो (वशिनी त्वम्) पति को शुभ कृत्यों से वश में रखने वाली, तुम (विदथन्) पति के घर में स्थित भृत्यादि को (आ, वदासि) अच्छे प्रकार आज्ञा दो ।।१।।

ओ३म् सुकिंशुकं शाल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ।।२।।

–ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० २०। गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ४। सू० १।।

अर्थ–हे (सूर्ये) सूर्यवत् तेजस्विनी कन्ये ! (सुकिंशुकम्) अच्छे पलाश के वृक्ष से निर्मित (शाल्मलिम्) सेमर के वृक्ष की लकड़ियों से युक्त (विश्वरूपम्) नाना वर्ण वाले (हिरण्यवर्णम्) सोने के अलंकारों से युक्त (सुवृतम्) अच्छे चलने वाले (सुचक्रम्) सुन्दर पहिये वाले इस रथ पर तुम (आ, रोह) चढ़ो और (पत्ये) अपने पति के लिये (वहतुम्) अपने गमन को (स्योनम्) सुखकारी और (अमृतस्य लोकम्) पीड़ा रहित स्थान (कृणुष्व) करो। यह मन्त्र कुछ पाठ भेद के साथ सा० म० ब्रा० प्र० १। खण्ड ३। मं० ११ में भी आया है। वधू के रथारोहणारम्भ के समय इस मन्त्र के बोलने की आज्ञा आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र खण्ड ५ सूत्र २२ में भी है।

इन उपर्युक्त दो मन्त्रों को बोलकर रथ को चलावें। यदि वधू को वहाँ से अपने घर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोलकर नौका पर बैठें–

ओ३म् अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखाय ।

(ऋचा का पूर्वाध) ।।

अर्थ–हे (सखायः) चेतनत्वेन सभानख्याति वाले जीवो ! जब (अश्मन्वती) पत्थर आदि से युक्त नदी (रीयतो) बहती हो, तब (सम्, रभध्वम्) अच्छे प्रकार वेग व उत्साह से काम लो (उत्, तिष्ठत) सावधान होकर स्थित होओ और उस नदी को (प्र, तरत) अच्छी तरह उतर जाओ। और नाव से उतरने के समय–

ओ३म् अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्।।

–ऋ० मं० १०। सू० ५३। मं० ८।।

अर्थ–ऐसा समझो कि (अत्र) यहाँ नदी पर ही (ये) जो (अशवाः) दुःखदायी व दुःखसाधन (असन्) है, उन्हें (जहाम्) छोड़ते हैं। और (गयम्) हम (शिवान्, वाजन्) कल्याणकारी अन्नादि पदार्थों को (अभि) प्राप्त होने के लिये (उत्तरेम्) उतरेंगे ही।

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोलकर नाव से उतरें। पुनः इसी प्रकार मार्ग में चार मार्गों का संयोग, व्याघ्र, चोर आदि से भय व भयंकर स्थान, ऊँचे खड्डे वाली पृथ्वी, बड़े वृक्षों का झुण्ड व श्मशान भूमि आवे तो–

ओ३म् मा विदन् परिपन्थिनी य आसीदन्ति दम्पति । सुगेभिर्दुर्गमतीतामपद्रान्त्व रातयः ।

–ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३२। तथा सा० मं० प्र० १। ख० ३। मं० १२।।

अर्थ–(ये) जो (परिपन्थिनः) दुःख देने वाले डाकू आदि (दम्पति) इन रथारूढ़ पत्नी-पति के प्रति (आ, सीदन्ति) सम्मुख आते हैं, (मा, विदन्) ईश्वर करे कि न मिलें। (दुर्गम्) दुर्गम प्रवेश को (अति) उल्लंघन करके (सुगेभिः) सुगम मार्गों से (इतम्) जाने वालों के (अरातयः) जो शत्रु हैं, वे भी ईश्वर करे कि (अप, द्रान्तु) भाग जावें।

इस मन्त्र को बोले । तत्पश्चात् वधू-वर जिस रथ में बैठकर जाते हों उस रथ का कोई अंग टूट जाये अथवा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देखकर निवास करना और रखे हुये विवाहाग्नि को प्रकट करके उसमें चार व्याहृति आज्याहुति देने के पश्चात् वामदेव्यगान करना ।

फिर जब वधू-वर का रथ वर के घर के आगे पहुँचे तब कुलीन पुत्रवती, सौभाग्यवती व कोई ब्राह्मणी व अपने कुल की स्त्री के आगे सामने आकर वधू का हाथ पकड़कर वर के साथ रथ से नीचे उतारें और वर के साथ सभामण्डप में ले जावे । सभामण्डप द्वार के आते ही यहाँ कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करके–

वर निम्न मन्त्र बोले–

ओ३म् सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत् ।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

–ऋ० मं० १०। सू० ८५। म० ३३॥

अर्थ–हे विद्वानो ! यह वधू मंगलस्वरूप है, अतः इस कन्या के साथ मेल रखो और इसको मंगलदृष्टि से देखो और इसके लिये सौभाग्य का आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर के प्रति जाओ और विशेष रूप से परांगमुख होकर न जाओ किन्तु पुत्रादि के मंगल की आशा से फिर भी आने के लिये जाओ ।

आये हुए लोग आशीर्वाद दें–

ओ३म् सौभाग्यमस्तु, ओ३म् शुभं भवतु ।

अर्थ–ईश्वर करे कि सौभाग्य हो और कल्याण हो ।

इस प्रकार आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वर–

ओ३म् इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधिजिव्री विदथमा वदाथः ।

–ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० २८।

अर्थ–हे वधू ! (ते) तुम्हारा (इह) इस पतिकुल में (प्रियम्) सुख (प्रजया) सन्तान के साथ (सम् ऋध्यताम्) अच्छे प्रकार बढ़े (गार्हपत्याय) घर की स्वामिनी बनने के लिये (अस्मिन् गृहे) इस पति के घर (जागृहि) जागती रहो–सावधान रहो । (एना, पत्या) इस पति के साथ ही (तन्वम्) अपने शरीर का (सं, सृजस्व) संसर्ग करो (अध) और (जिव्री) वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तुम दोनों–पति-पत्नी (विदथम्) गृहस्थाश्रम धर्म पालनरूप यज्ञ की (आ, वदाथः) अच्छे प्रकार प्रशंसा करो ।

इस मन्त्र को बोलकर वधू को सभामण्डप में ले जावे, फिर वधू-वर पूर्व स्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें उस समय वे–

ओ३म् इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पुरुषाः इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा निषीदतु ।

–सा० मं० प्र० १। खं० ३। मं० १३। तथा पार० गृ० सू० क० १। का० ८। एसू० १०। अ० कां० २०। सू० १२७। मं० १२॥

अर्थ–(इह) इस पतिकुल में (गावः) गौएं (प्र, जायध्वम्) अधिक हों (इह) यहाँ (अश्वाः) घोड़े और (इह) यहाँ (पुरुषः) पुत्र पौत्रादि अधिक हों । (इह, उ) और यहाँ (तृषा) उस घर का पोषण करने वाला मैं (सहस्रदक्षिणः अपि) सहस्रों का दान देता हुआ ही (वि, षीदतु) बैठा रहूँ ।

इस मन्त्र को बोलकर यज्ञ कुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावें फिर–

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥
ओ३म् अमृतापिधानिमसि स्वाहा ॥२॥
ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम् स्वाहा ॥३॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें। फिर कुण्ड में यथाविधि समिधाचयन, अग्न्याधान करें। यदि उसी कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित हो तो उस पर ही घृत सिद्ध करके समिदाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि से (ओ३म् अग्नये स्वाहा) आदि आघारावाज्यभागाहुति चार और (ओ३म् भूरग्नये०) आदि व्याहृति आहुति चार, तथा (ओ३म् त्वन्नो अग्ने०) आदि अष्टाज्याहुति आठ, सब मिलाकर सोलह आज्याहुतियाँ वधू-वर देकर प्रधान होम का आरम्भ निम्नलिखित मन्त्रों से करें–

ओ३म् इह धृतिः स्वाहा। इदमिह धृत्यै-इदन्न मम ॥
–मं० ब्रा० १-६-१-४ ॥

अर्थ–हे वधू! (इह) इस घर में तुम्हारा (धृतः) धैर्य बना रहे॥

ओ३म् इह स्वधृतिः स्वाहा। इदमिह स्वधृत्यै-इदन्न मम ॥

अर्थ–(इह) इस घर में (स्वधृतिः) अपने कुटुम्बी लोगों के साथ एकत्र स्थिति अर्थात् मेल हो।

ओ३म् इह रतिः स्वाहा। इदमिह रत्यै-इदन्न मम ॥
अर्थ–(इह, रतिः) यहाँ रमण बना रहे।

ओ३म् इह रमस्व स्वाहा। इदमिह रमाय-इदन्न मम ॥
अर्थ–(इह रमस्व) यहाँ तुम भी रमण किया करो।

ओ३म् मयि धृतिः स्वाहा। इदं मयि धृत्यै-इदन्न मम ॥
अर्थ–(मयि) मुझ पति में (धृतिः) धैर्य बना रहे।

ओ३म् मयि स्वधृतिः स्वाहा। इदं मयि स्वधृत्यै-इदन्न मम॥

अर्थ–(मयि, स्वधृतिः) मेरे लिये विशेष आत्मीय जनों के साथ मेल रहे॥

ओ३म् मयि रमः स्वाहा इदं मयिरमाय-इदन्न मम ॥
अर्थ–(मयि, रमः) मेरे पदार्थों में रमण किया करो।

ओ३म् मयि रमस्व स्वाहा। इदं मयि रमाय-इदन्न मम ॥
सा० मं० प्र० १। खं० ३। मं० १४।

अर्थ–(मयि, रमस्व) विशेषकर मुझमें ही रमण किया करो। इन प्रत्येक मन्त्रों से एक-एक करके आठ आज्याहुति देकर–

वर-वधू निम्न चार आज्याहुति दें–

ओ३म् आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा। अदुर्मंगलीः पतिलोकमविश शन्नो भव द्विपदे शंचतुष्पदे स्वाहा। इदं सूर्याय सावित्र्यै इदन्न मम ॥१॥
–ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४३॥

अर्थ–हे वधू (अर्यमा) न्यायकारी दयालु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाय) जरावस्थापर्यन्त जीने के लिये (नः) हमारी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (आजनयतु) प्रसिद्ध करें (समनक्तु) उससे उत्तम सुख को प्राप्त करे और वे शुभ गुणयुक्त (मंगली) स्त्री लोग सब कुटुम्बियों को आनन्द (अदुः) देवें। उनमें से एक तुम हो वरानने (पतिलोकम्) पति के घर व सुख को (आविश) प्रवेश करो व प्राप्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों के लिये (शम्) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) गो आदि को (शम्) सुखकर्त्री (भव) हो ॥१॥

ओ३म् अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवृकामा• स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा। इदं सूर्यायै सावित्र्यै-इदन्न मम ॥२॥ –ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४४।

• वस्तुतः 'देवकामा' पाठ है अर्थात् देवताओं को इच्छा करने वाली।

अर्थ–पति का विरोध न करने वाली, अपने उत्तम पुरुषार्थ से तुम प्रिय दृष्टि हो, मंगल करने वाली, सब पशुओं की सुखदाता पवित्रान्तः करणयुक्त सुन्दर शुभ गुण कर्म स्वभाव से उत्तम, वीर पुरुषों को उत्पन्न करने वाली, देवर की शुभ कामना करती हुई सुखयुक्त होकर हमारे मनुष्यादि के लिये सदा सुख करने हारी हो और पशु आदि को भी सुख देने वाली हो, वैसे ही मैं तुम्हारा पति भी वर्ता करूँ ।।२।।

ओ३म् इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि स्वाहा । इदं सूर्यायै सावित्र्यै–इदन्न मम ।।६।।

–ऋ० मं० १०। स० ८५। मं० ४५।।

अर्थ–ईश्वर, पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि (मीढ्वः) वीर्य सेचन करने हारे (इन्द्रः) परमैश्वर्य युक्त ! इस वधू के स्वामिन् (त्वम्) तू (इमान्) इस वधू को (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुन्दर सौभाग्य वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) दस (पुत्रान्) पुत्रों को (आ, धेहि) उत्पन्न कर, अधिक नहीं । और हे स्त्री तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दश पुत्र और (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पति को प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर, यदि इससे आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त हो जाओगे । इसलिये अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना ।

ओ३म् साम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव । ननान्दरि सम्राज्ञी भव । सम्राज्ञी अधि देवृषु स्वाहा । इदं सूर्यायै सावित्र्यै–इदन्न मम ।।४।।

–ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४६।

अर्थ–हे वरानने ! तुम (श्वशुरे) मेरा पिता जोकि तुम्हारा श्वसुर

है उसमें उचित प्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान् चक्रवर्ती राजा की रानी समान पक्षपात छोड़कर प्रवृत्त (भव) हो (श्वश्र्वाम्) मेरी माता को जोकि तुम्हारी सासु है उसमें प्रेमयुक्त होकर उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा करो, (ननान्दरि) जो मेरी बहिन और तुम्हारी ननद है उसमें भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाई जो तुम्हारे देवर–ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उनमें भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान् (अधि, भव) अधिकारयुक्त हो । अर्थात् सबसे अविरोधपूर्वक प्रीति से बर्त्ताव करो ।।४।।

पश्चात् निम्नलिखित छः आहुति दें–

ओ३म् यदस्य कर्मणो०, इस मन्त्र से स्विष्टकृत् होमाहुति एक, **'ओ३म् भूरग्नये स्वाहा'** आदि व्याहृतियों की आज्याहुति चार और **'ओ३म् प्रजा पतये स्वाहा'** यह प्राजापत्याहुति एक, ये सब मिलकर छः आज्याहुति देकर–

निम्न मन्त्र दोनों बोलें, एवं दधि-प्राशन करें–

ओ३म् समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ।।

–ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४७ ।।

अर्थ–हे विद्वानो ! आप इसको निश्चय करके जानिये कि अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थाश्रम में एकत्र रहने के लिये हम एक दूसरे को स्वीकार करते हैं । हमारे दोनों के हृदय जल समान शान्त और मिले हुये रहेंगे । जैसे प्राण वायु हमको प्रिय है वैसे हम दोनों एक दूसरे के साथ रहेंगे, जैसे परमात्मा सबसे मिला हुआ सबको धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे, जैसे उपदेश करने हारे श्रोताओं में प्रीति करते हैं वैसे हमारे दोनों की आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को धारण करे ।

गुरुजनों का अभिवादन

अहं भो अभिवादयामि●।

अर्थ–मैं अमुक आपको प्रणाम करता हूँ व करती हूँ। तत्पश्चात् इस (उपर्युक्त वाक्य को बोलकर) वधू, वर दोनों वर के माता-पिता आदि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्ते करें।

वामदेव्य गान एवं ईश्वरोपासना

तत्पश्चात् सुभूषित होकर शुभासन पर बैठकर वामदेव्यगान करके उसी समय ईश्वरोपासना करनी, उस समय कार्यार्थ आए हुए सब स्त्री-पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें।

वर-वधू द्वारा आशीर्वाद की याचना

तत्पश्चात् वधू-वर, पिता आचार्य और पुरोहित आदि को कहें कि–

ओ३म् स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु।

–आश्व० गृ० अ० १। क० ८ सू० १५॥

अर्थ–कृपया, आप लोग हमारे लिये स्वास्तिवाद कहिये।

स्वस्ति वाचन पाठ

● सबसे उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये है। नित्यप्रति स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि प्रातः सायं और विशेष अवसरों पर जब मिलें तब इस वाक्य से परस्पर अभिवादन करें।

तत्पश्चात् पिता, आचार्य पुरोहित जो विद्वान हो अथवा उनके अभाव में यदि वधू वर विद्वान् वेदवित् हों तो वे ही दोनों स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें।

वर-वधू के लिये आशीर्वाद–

पाठ हुए पश्चात् कार्यार्थ आए स्त्री-पुरुष सब निम्न वाक्य बोलें–

ओ३म् स्वस्ति ओ३म् स्वस्ति ओ३म् स्वस्ति।

अर्थ–संसार का रक्षक भगवान् इनका अत्यन्त कल्याण करे॥

आगन्तुकों की ससम्मान विदाई–

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता–पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को तथा माता, चाची, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार करके विदा करें।

गृहस्थाश्रम-व्यवहार

तत्पश्चात् वधू-वर क्षीर आहार और विषयतृष्णा-रहित व्रतस्थ होकर शास्त्रोक्त रीति से विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो किसी दूसरे दिन गर्भ स्थापना करें और जो वर दूसरे देश से विवाह करने के लिये आया हो तो वह जहाँ जिस स्थान में विवाह करने के लिये जाकर उतरा हो उस स्थान में गर्भाधान करे। पुनः अपने घर आने पर पति, सासु, श्वसुर, नन्द, देवर, देवरानी, ज्येष्ठ, जिठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करे। सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्ते और मधुर वाणी, वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रखें तथा वधू सबको प्रसन्न रखे और वर उसे वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्ते तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे तथा वर भी स्त्री की प्रसन्नता में तत्पर रहे।

(इति विवाह संस्कार विधिः)

वाग्दान (सगाई)

विवाह से पूर्व माता-पिता अथवा अभिभावकों द्वारा कुमार-कुमारी का जो सम्बन्ध पक्का किया जाता है उसके 'मंगनी', 'सगाई', 'मुद्दा' आदि नाम प्रचलित हैं। इस रीति का शुद्ध संस्कृत नाम 'वाग्दान' है।

इसका वर्णन महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ संस्कारविधि में विवाह संस्कार की विधि से पूर्व 'परीक्षा' शब्द से किया है। यह विधि विवाह से पूर्व अवश्यमेव करनी चाहिए।

विधि (१)—सर्वप्रथम गायत्री मन्त्र तथा ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के आठ मन्त्र सब लोग उच्चारण करके वर-कन्या खड़े होकर परस्पर एक दूसरे के गले में फूलमाला डालें।

विधि (२)—पश्चात् दोनों खड़े होकर परस्पर कहें—

ओ३म् ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञेऋते सत्यं प्रतिष्ठितम्। यदियं कुमार्यमभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम्। यत् सत्यं तद्दृश्यताम्॥

—आश्वा० गृ० सू० अं० १ कं० ५ म० ५

भावार्थ—हे स्त्री व हे पुरुष! इस जगत् के पूर्व ऋतु यथार्थ स्वरूप महत्त्व उत्पन्न हुआ था और महत्त्व में सत्य त्रिगुणात्मक नाश रहित प्रकृति प्रतिष्ठित है। जैसे—पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी और आप कुमार अथवा मैं कुमार और आप कुमारी दोनों विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करते हैं। ईश्वर कृपा से हम दोनों अपनी इस प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए दृढ़ोत्साही रहें।

विधि (३)—तत्पश्चात् अग्न्याधान कर अष्टाज्याहुति एवं आज्याहुति सहित यज्ञ (हवन) करें और निम्न मन्त्रों द्वारा विशेष आहुतियाँ

देवें। यदि हो सके तो कोई विद्वान् अथवा पुरोहित इनका भावार्थ भी सुना दे।

१. **ओ३म् भगमस्या वर्च आदिष्यधिवृक्षादिव स्रजम्।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम्॥**

२. **ओ३म् एषा ते राजन् कन्या वधूनि धूयतां यम।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातु रथो पितुः॥**

३. **ओ३म् एषा ते कुलपा राजन्तामु ते परिदद्मसि।
त्योक् पितृष्वासाता आ शीष्णः समोप्यात्॥**

४. **ओ३म् असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च।
अन्तः कोष मित्र जामयोऽपि नह्यामि ते भगम्॥**

— अथर्व० १।१४।१-४

भावार्थ—इन मन्त्रों में कन्या को उचित आयु पर उचित पात्र के हाथ में देने का उपदेश है। भावार्थ इन मन्त्रों का यह है कि समावर्तन संस्कार के पश्चात् एक ब्रह्मचारी कन्या के माता-पिता से प्रस्ताव करता है कि जिस प्रकार वृक्षों से पुष्प लेकर गले की माला बना ली जाती है उसी भाँति से मैं ब्रह्मचारी इस कन्या के सौन्दर्य और तेज को ग्रहण करके आपको सजाना चाहता हूँ। जिस प्रकार बड़ी जड़ वाला पर्वत अपने ही आधार पर स्थित रहता है, उसी प्रकार कन्या भी स्वः माता-पिता के घर में विवाह काल पर्यन्त सुरक्षित रहे। दूसरे मन्त्र में कन्या के माता-पिता वर के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हैं और कहते हैं कि—हे राजन्! (ज्ञान और ब्रह्मतेज से प्रकाशमान् वर) यह हमारी कन्या तुम्हारी वधू बनकर नियमपूर्वक व्यवहार करे। गृहस्थ का आनन्द ले। यह कन्या विवाह होने से पूर्व अपने माता-पिता भाई के गृह पर रहे। हे व्रतधारिन! यह हमारी कन्या तुम्हारे कुल का पालन करने वाली हो। तुम्हारे लिये हम इसको समर्पण का संकल्प करते हैं। यह अपनी उत्तम बुद्धि से उत्तम विचारों का

बीज बोये। बन्धन रहित अर्थात् स्वतन्त्र दृष्टा या अपनी परिस्थिति का निरीक्षण करने वाले और ऐश्वर्यवान् आप वर के साथ इस कन्या के भाग्य का सम्बन्ध करते हैं। जिस प्रकार स्त्रियाँ अपने जेवर सन्दूक में बन्द रखती हैं, उसी प्रकार इस कन्या का सौभाग्य सुरक्षित रहे।

५. ओ३म् तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः। स शुक्रेभि शिक्वभी रेवदस्मे दीदीयानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु॥

—ऋ० २।३५।४॥

भावार्थ—जो उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त शुद्ध युवक और युवतियाँ परस्पर एक दूसरे को अच्छे प्रकार परीक्षा करके प्राप्त होते हैं। वह हृदय में प्रेम तथा आनन्द को प्राप्त होकर गृहस्थ का उपभोग करने के लिये तत्पर होवें।

६. ओ३म् सोमो वधूयूरभवदश्विनास्तमुआवरा सूर्या यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्॥

—अ० १४।१।६॥

भावार्थ—सोम वधू की कामना करता था, मँगनी करने वाले अश्विनी देव थे। सूर्या वधू का सूर्य पिता, अपनी पुत्री का वर के हाथ मन से दान करता है।

प्रार्थना

ओ३म् कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठयां वृता।

—ऋ० ४।३१।१॥

भावार्थ—हे महान् प्रभु आपकी यह सृष्टि आश्चर्यमय है। आप

सदैव हमारे कल्याण के लिए शुभ और मंगल अवसर प्रदान करते रहते हैं। आपकी ही इस आनन्दमय सृष्टि में दो जीवों का अर्थात् नर और नारी का मिलाप एक शुभ समय की ओर संकेत करता है। आप प्रभु सबसे श्रेष्ठ हैं अत: हम भी इस सम्बन्ध से सर्वश्रेष्ठ बनें। इस आह्लाद-दायक शुभ अवसर पर हम सब स्त्री-पुरुष इस परिवार के साथ हर्ष मनाते हुए इनकी प्रसन्नता में सम्मिलित होते हैं। हे दयामय! इस मंगलमय आनन्दयुक्त समय की सफलता के लिए आपसे प्रार्थी हैं। हे प्रभु, कुशल आनन्द, हर्ष तथा कल्याण की ही वर्षा करो।

विधि (४)—तत्पश्चात् कन्या का पिता अथवा माता अथवा कोई अभिभावक लड़के के मस्तक पर अनामिका और अंगुष्ठ से रोली से तिलक करके उस पर चावल लगाकर कुछ द्रव्यादि और नारियल वर के हाथ में देवे और वर उन्हें दोनों हाथों से ग्रहण करता हुआ अपने श्वसुर आदि से नमस्कार (नमस्ते) करे। इसी प्रकार वर की माता आदि लड़की को भी अपनी ओर से अँगूठी अथवा अपनी इच्छा और शक्ति के अनुसार आभूषणादि पहनावे। इसी अवसर पर कन्या के पिता आदि वर पक्ष को नकद तथा फल मिठाई आदि जो भी भेंट करना चाहें कर सकते हैं। अन्त में पुरोहित और सेवक को दक्षिणा देकर सब जने निम्न प्रार्थना करें। तत्पश्चात् शान्ति पाठ के साथ इस विधि को समाप्त करें।

प्रश्न—वर पक्ष के स्त्री, पुरुषों एवं बालकों का लड़की देखने जाना और लड़की वाले से मिलनी आदि लाना ठीक है या नहीं?

उत्तर—यह चीज बहुत भद्दी है और नहीं होनी चाहिए। वाग्दान से पूर्व लड़की देखने पर कुछ भी लेना-देना नहीं होना चाहिए।

विवाह पत्रिका (लग्न पत्रिका)

विवाह से कुछ दिन पूर्व कन्या पक्ष की ओर से एक पत्र लिखकर वर पक्ष को भेजा जाता है जिसे 'लग्न' या 'टीका' के नाम से बोला जाता है। वस्तुतः इसका शुद्ध नाम 'विवाह-पत्रिका' होना चाहिए। यह 'पत्रिका' अवश्य भेजनी चाहिए। इसका नमूना निम्न प्रकार है–

ओ३म् इह त्वष्टारमग्रियम्विश्वरूपमुपह्वये अस्माकमस्तुकेवलः नमामीशमीशाननिर्वाणरूपम्। विभुंव्यापकम् ब्रह्मवेदस्वरूपम् निजनिर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं।

आयुष्यश्च बलं वीर्य, तेजः पुण्यं यशस्तथा।
ऐश्वर्य विपुलश्चैव, वन्दनोतु सदाशिवः॥

ओ३म् तस्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्धे श्री श्वेत बाराह कल्पे वैवस्वत् मन्वन्तरे कलियुगे कलि प्रथम चरणे–

श्रीमन्महाराज विक्रमादित्यस्य राज्यतो गताब्दा .... श्रीमदद्यानन्दर्षेजन्मतो गतवत्सरा ....। .... मासे .... पक्षे .... तिथौ .... वासरे .... देव्याःसह श्रीयुत .... महोदयस्य .... पुत्रस्य .... काल घं० .... मि० .... वादनवेलायाँ विवाह विधि भविष्यति। तैलारोहणमभ्यंगश्च .... काले विधास्यते।

● जिस समय और जहाँ यह पत्रिका लिखी जाय इसके रिक्त स्थानों में यथा योग्य अंक तथा नामादि भरने चाहिए। यह पत्रिका भेजने से पूर्व कन्या पारिवारिक जनों के साथ बैठकर सामान्य यज्ञ करे।

ततश्च तत्र भवद्भ्यः .... शुभ स्थान निवासिभ्यः आदरणीय महाभागेभ्यः श्रीमद्भ्यः स्वनाम धन्य श्री .... श्री .... श्री .... श्री .... श्री .... आदिभ्यः अत्र भवतां .... निवासीनां .... इत्यादिनामाभिवादनं यथा योग्यं। अत्र कुशलं तत्रास्तु।

तिथि ....। ह० पत्रिका लेखक ....

उक्त पत्रिका पाँच दिन, एक सप्ताह, दस दिन अथवा १५ दिन पूर्व कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को भेजी जानी चाहिए।

प्रश्न–इस लग्न पत्रिका में कुछ चावल आदि रखने चाहिए या नहीं?

उत्तर–शिष्टाचारार्थ यदि इसमें दो छोटी-छोटी रोली, मेहन्दी की पुड़ियाँ, कुछ चावल, सुपारी, बादाम तथा मिश्री के टुकड़े, इलायची के दाने और हरी दूब रख दी जाये तो हर्ज नहीं। और पत्रिका को ठीक तह करके दो तीन रंग के गुंथे हुए डोरी में बाँध भी दिया जाये तो सुन्दर रहेगा।

प्रश्न–वर-गृह पर पत्रिका पहुँचने पर क्या विधि सम्पन्न होनी चाहिये?

उत्तर–इष्ट मित्रों की उपस्थिति में ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना एवं स्वस्तिवाचन मन्त्रों के पाठ सहित सामान्य यज्ञ विधि के पश्चात् वर का तिलक होकर पत्रिका को पढ़कर सुनाया जावे। अवसरोचित सुन्दर गीत गाये जायें। वर सभी को यथायोग्य अभिवादन करे। किसी पेय पदार्थ द्वारा स्वागत या प्रसाद-वितरण के पश्चात् शान्ति पाठ करें।

घुड़चढ़ी या निकासी

विवाह संस्कार जिस दिन होता है उससे पहले दिन वर के घर पर उसे तैयार करके घोड़ा आदि पर चढ़ाकर मन्दिर आदि में ले जाने की एक प्रथा है इसे 'घुड़चढ़ी' या 'निकासी' कहते हैं। यह समावर्त्तन संस्कार के अन्त का विषय है। इसकी रूपरेखा आद्योपान्त इस प्रकार होनी चाहिए–

१. घर के किसी विशेष स्थान पर दरी, गलीचा आदि अच्छी तरह बिछाकर लड़के के घर के सब स्त्री-पुरुष, पुरोहित, आचार्य, रिश्तेदार तथा मित्रादि वहाँ यथा स्थान बैठें। और लड़के के लिये एक विशेष स्थान उसे पूर्वाभिमुख बैठने के लिए छोड़ दें। आचार्य (जिसने अन्तिम बार लड़के को पढ़ाया हो) लड़के के दक्षिण में बैठें।

२. लड़का स्वच्छ एवं सुगन्धित जल से स्नान करे और उसे उस पूर्व निश्चित स्थान पर लावें। (लाने से तात्पर्य उसे सत्कार पूर्वक किसी के साथ आना है। वैसे लड़का स्वयं ही आएगा। कहीं भी किसी भी समय लड़का या लड़की को किसी मामा आदि की गोद में लेकर पट्टे आदि से उठाना या लाना नहीं चाहिए। और लड़का अपने निश्चित किए स्थान पर पूर्वाभिमुख पालथी मारकर आराम से बैठे और थोड़ा मधुपर्क प्राशन करके आचमन कर लेवे। (इस समय जहाँ तक हो सके लड़के को धोती या पीताम्बर धारण कराना चाहिए। यथा सम्भव पेंट या पाजामा नहीं पहनाना चाहिए।)

३. इसके बाद पुरोहित जी लड़के के सामने बैठकर उसके मस्तक पर चन्दन लगाकर उस पर रोली और चावल लगायें तथा अपने मस्तक पर लड़के से इसी प्रकार तिलक करायें।

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥ ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ ओ३म् सत्यं यशःश्रीर्मयिश्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

–इन तीन मत्रों से तीन आचमन करा तथा स्वयं इन्हीं मन्त्रों से तीन आचमन कर ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के आठ मन्त्रों का पाठ सब मिलकर करें। तत्पश्चात्–

४. **ओ३म् परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।**
शतं च जीवामि शरदःपुरूचि रायस्योषमभिसंव्ययिष्ये ॥

इस मन्त्र से सुन्दर श्रेष्ठ वस्त्र (कमीज या कुर्ता) धारण करे। (सबसे नीचे बनियान बण्डी आदि स्नान के स्थान पर ही पहले ही पहन कर आना चाहिए।) फिर–

ओ३म् यशसा माद्यावा पृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पती।
यशो भगस्य मा विन्दद्यशोभा प्रतिपद्यताम् ॥

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र (कोट आदि) धारण करके–

ओ३म् यद्यशोऽप्सरस भिन्द्रश्चकार विपुल पृथु।
तेन सङ्ग्रथिता सुमनस आबध्नामि यशोमयि ॥

इस मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला धारण करनी। पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् दुपट्टा, अथवा टोपी (जो पसन्द हो) तथा मुकुट या कलंगी आदि भी (यदि पसन्द हो) लेकर–

ओ३म् युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उश्रेयान् भवत जायमानः।

इस मन्त्र से धारण करें।

प्रश्न–क्या यहाँ वर के सेहरा और मुँह सेहरा न बाँधे ?

उत्तर–बिल्कुल नहीं, क्योंकि सेहरा मुसलमानी रिवाज है, पता नहीं कब से कैसे यह आर्यों में आ गया है। और मुँह सेहरा बाँधकर तो वर की शकल बिगाड़नी है। कभी किसी बदशकल वर की आकृति छिपाने के

लिये किसी ने यह तरकीब निकाली होगी जोकि अब तक चली आ रही है।

उसके पश्चात् अलंकार (अँगूठी आदि) लेकर–

ओ३म् अलंकरणमसि भूयोऽलंकरण भूयात् ॥

इस मन्त्र से धारण करे और--

ओ३म् वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असिचक्षु मे देहि ॥

इस मन्त्र से भाभी से आँख में अञ्जन या काजल डलवाये तत्पश्चात्–**रोचिष्णुरसि ॥**

इस मन्त्र से दर्पण में मुख देखकर पगड़ी आदि ठीक करें तथा कहीं काजल आदि लगा हो तो साफ करें। (दर्पण दिखाने का कार्य नाई या सेवक द्वारा हो सकता है।) तत्पश्चात्–

ओ३म् बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मने मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्धेहि ॥

इस मन्त्र से छत्र लगावे। (इस समय किसी सेवक को छत्र खोलकर वर के सिर पर करके खड़ा होना चाहिए।) पुनः–

ओ३म् प्रतिष्ठेस्थो विश्वतो मा पातम् ॥

इस मन्त्र से उपानह, पादवेष्टन, पगरखा और जिसे जोड़ा अथवा जूता या बूट आदि भी कहते हैं, धारण करें। जूता जहाँ तक हो सके चमड़े का न हो, यदि चमड़े का ही हो तो हिंसा से प्राप्त तो कदापि न होना चाहिए।) तत्पश्चात्–

ओ३म् विश्वेभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्यपरिपाहि सवतः ॥

इस मन्त्र से बाँस आदि की कोई सुन्दर छड़ी (बेंत) हाथ में धारण करनी चाहिए। तत्पश्चात् वर के माता-पिता आदि बड़े मान, प्रतिष्ठा उत्सव, उत्साह से घर से बाजे-गाजे के साथ उसे आर्य समाज मन्दिर में ले जावें। इस अवसर पर वर के अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि आचार्य, पुरोहित, काजल डालने वाली भाभी, शीशा आदि दिखाने वाले सेवक तथा

लड़के की माता, बहिन, भूआ आदि तथा बहनोई, फूफा आदि सबको यथाशक्ति सत्कार पूर्वक दक्षिणा आदि प्रेम तथा प्रसन्नतापूर्वक देवें और वर अपने माता-पिता तथा पुरोहित आदि के चरण स्पर्श पूर्वक उन्हें नमस्ते करे और अपने आचार्य का सत्कार निम्न सम्बोधन से करे–

"सुनो भद्र जनो! इन पूजनीय आचार्य ने मेरे पर बड़ा उपकार किया है, जिन्होंने मुझे पशुता से छुड़ा उत्तम विद्वान् बनाया है। इनका प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इसके बदले मैं अपने आचार्य को अनेक धन्यवाद दे नमस्कार करता हूँ।" ऐसा कहकर फिर एक बार आचार्य को नमस्कार करे।

समाज मन्दिर में यदि समय हो तो दैनिक यज्ञ करे अन्यथा केवल दक्षिणा तथा शक्ति समाज के किसी अधिकारी को देकर वापिस अपनी चौपाल या दुकान आदि पर आ जावें।

घुड़चढ़ी के समय वर का घोड़ी पर बैठना ही ठीक रहता है। इस अवसर पर वर के पीछे उससे छोटे भाई को बैठाने की प्रथा कहीं-कहीं है। यदि ऐसा हो तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस समय वर द्वारा माँ का स्तन मुँह में लेना तथा गधी के लात लगाना व्यर्थ है।

यदि समय कम हो तो वर को वस्त्र आदि पहनाने की क्रिया तो सब करनी ही चाहिए। मन्त्रों का उच्चारण छोड़ा जा सकता है। जैसाकि आजकल हो रहा है।

भात लेना-देना आदि

यह प्रथा वर तथा वधू के मातृ-कुल की ओर से विवाह के अवसर पर वस्त्र-पात्र आदि प्रदान करने के रूप में प्रचलित है, जोकि ग्राह्य है। परन्तु इस अवसर पर (भात लेने-देने के समय) किसी को बुलाकर दिखावा आदि करना, भद्दे गीत गाना तथा घर के द्वार पर भातियों को खड़ा

करके बहिन द्वारा उनकी मिनती आदि करना यह सब अनुचित और व्यर्थ है। बहिन अपने भाइयों के यहाँ भात-नोंतन (भ्रातृ-निमन्त्रण) वास्ते जाती है, यह ठीक है। भात नोंतने का प्रचलित क्रम भी ठीक है।

गीत तथा बान आदि

प्रश्न–विवाह में स्त्रियों को गीत गाने चाहिए या नहीं ?

उत्तर–अवश्य गाने चाहिए, परन्तु गीत जो गाये जायें वे सब सार्थक वैदिक मर्यादा तथा आर्य मन्तव्यानुसार होने चाहिए। अश्लील, भद्दे, पाखण्ड को लिये हुए तथा व्यर्थ के नहीं।[1]

प्रश्न–बाने आदि आर्यों को करने चाहिये या नहीं ?

उत्तर–इसमें तीन बातें मुख्य हैं : (१) विवाह से पूर्व वर-वधू का उबटना आदि मलकर विशेष प्रकार से स्नान कराना। (२) इन दिनों में विशेष खाद्य पदार्थ (मोदक (बनवारे) आदि) उन्हें खिलाना। (३) दूसरे किसी प्रेमी या कुटुम्बी का विवाह वालों को इस अवसर पर भोजन कराना।

इनमें प्रथम दो बातें तो अवश्य ही होनी चाहिये, क्योंकि इनका तो समावर्त्तन के समय विधान है। तीसरी के विषय में यह है कि यदि कोई सच्चे प्रेम से बान का निमन्त्रण दे तो उसके यहाँ जाने और भोजन करने में हानि नहीं। परन्तु किसी बदले की भावना अथवा दिखावे आदि को लेकर ऐसा कदापि न होना चाहिए। बहू-नोंतने में भी यही समाधान समझें।

प्रश्न–विवाह में वर-वधू को मेंहदी लगानी चाहिए या नहीं ?

१. हमारे यहाँ से प्रकाशित 'महिला गीताञ्जलि' एवं 'स्त्री गीत संग्रह' में हमने कुछ उपयोगी गीतों का संकलन किया है।

उत्तर–मेंहदी लगाना अच्छा है।

प्रश्न–क्या चौक पूजना तथा गोर देना होना चाहिए ?

उत्तर–विवाह में स्त्रियाँ कुम्हारों के घर जाकर या अपने घर पर ही जो चाक पूजती तथा कन्या के विवाह में जो गोर दिया जाता है, दोनों प्रथा व्यर्थ हैं। अतः ये नहीं होनी चाहिए।

प्रश्न–ज्योनार होनी चाहिए या नहीं, और हो तो कैसी ?

उत्तर–वधू के श्वसुर-गृह में आने पर उसके स्वागत में इसका आयोजन होना चाहिए। भोजन शुद्ध घी का बना हो, सादा हो।

प्रश्न–खोइया करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर–इस समय स्त्रियाँ स्वच्छन्द होकर चाहे सो बकती हैं और करती कराती हैं। यह घोर वामाचार है और सर्वथा त्याज्य है। वस्तुतः यह 'खो हया' शब्द है जिसमें हया (लज्जा जो नारी का आभूषण है) की तिलांजलि ही दे दी जाती है।

मिलनी (परिचय सम्मेलन)

कन्या पक्ष के आदमी जब स-सम्मान वर को लेने के लिए जाते हैं तो साथ चलने के लिये अपने कुटुम्बी तथा मिलने-जुलने वालों को बुलाते हैं। वर के निवास स्थान पर पहुँचकर प्रथम बार दोनों पक्षों के विशिष्ट व्यक्तियों के इस परिचय सम्मेलन को ही मिलनी या 'खेत' कहते हैं। विधि निम्न है–

पूर्वाभिमुख बैठे हुए वर के सामने कन्या पक्ष का पुरोहित पश्चिमाभिमुख बैठकर वर से 'ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' आदि मन्त्रों से तीन आचमन तथा 'ओ३म् वाङ्म आस्येऽस्तु' आदि द्वारा जल से अंग स्पर्श करा तथा तीन आचमन कर सब लोग ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना के आठ मन्त्रों का उच्चारण करें। पश्चात् पुरोहित वर के मस्तक पर दक्षिण हाथ

की अनामिका तथा अँगुष्ठ से प्रथम चन्दन फिर उस पर रोली का तिलक करके उस पर चावल लगाकर एक रुपया और नारियल वर को देवे और वह उन्हें दोनों हाथों से लेकर थोड़ा झुककर पुरोहित जी को नमस्ते करे। दोनों पक्षों के विशिष्ट सम्बन्धियों आदि का परिचय कराया जावे । इस अवसर पर गद्य या पद्य में सुष्ठु और भावपूर्ण शब्द योजना में दोनों पक्षों की ओर से परस्पर श्रद्धा और सद्भावना का प्रकाशन होना उत्तम है । पश्चात् शान्तिपाठ कर वधू के घर जाने का ढंग करें ।

प्रश्न–क्या इस समय समधी अपने समधियों को तथा कन्या पक्ष के भाती वर पक्ष के भातियों को मिलनी आदि नहीं दें ?

उत्तर–यह उनकी इच्छा पर है । यदि चाहें तो दे ले सकते हैं ।

वर यात्रा का क्रम

वैदिक विवाहों में मार्ग में चलने का ढंग इस प्रकार होना चाहिए– सबसे आगे एक अच्छे घोड़े पर अच्छा सवार 'ओम्' का झण्डा लिए हुए होना चाहिए । उनके पीछे बड़े फर्रे, उसके पीछे छोटे फर्रे, फिर बाजा, फिर डण्डे, नफीरी आदि (यदि हों) फिर विवाह के परिचय का बोर्ड, फिर विवाह विषयक मोटो आदि फिर वर पक्ष के मुखिया और उनके पीछे बारात के सब आदमी क्रम से पंक्तिबद्ध चलें, फिर बल्लम वाले, फिर सूरजमुखी वाले, अन्त में सबसे पीछे वर की घोड़ा-गाड़ी होनी चाहिए । यही सर्वश्रेष्ठ ढंग संस्कार पर जाने का है ।

(बारौठी) वर का द्वार पर स्वागत

कन्या के द्वारे पहुँचने पर वर गाड़ी से उतर कर सबसे आगे होकर

मण्डप के द्वार पर जायेगा और वधू अपनी सखी आदि के सहित उसे नमस्ते करके उसको फूलमाला पहनायेगी । सखियों द्वारा सुन्दर स्वागत-गीत गाये जायेंगे । इतना होने पर वधू वेदी पर तथा अन्य स्त्रियाँ वहीं अपने स्थान पर चली जायेंगी तथा वर मण्डप में एक विशेष स्थान पर बैठाया जायेगा जो उसके लिए प्रथम से नियत हो और कन्या पक्ष के पुरुष सब बारातियों का वाणी, मालाओं तथा किसी पेय आदि से सत्कार करते हुए उन्हें शान्तिपूर्वक आराम से बैठायेंगे ।

प्रश्न–वर को तोरण चटकाना चाहिए या नहीं ?

उत्तर– नहीं । इसका कोई तात्पर्य नहीं है यह व्यर्थ है ।

प्रश्न–इस समय कन्या पक्ष की ओर से किसी का वर पक्ष के लिए स्वागत पत्र तथा कविता आदि पढ़ना तथा वर के बहनोई आदि का बटुवे तथा रूमाल आदि बाँटना आदि को आप ठीक समझते हैं या नहीं ?

उत्तर–स्वागत-पत्र और कवितायें आदि पढ़ी जायें, परन्तु ये किसी अच्छे लेखक या कवि की बनाई हुई हों । व्यर्थ अण्ड-बण्ड बक कर एक रस्म पूरी करने से न होना अच्छा है ।

अन्य ज्ञातव्य

(१) बारात में जहाँ तक हो थोड़े आदमी और सच्चे प्रेमियों को ही ले जाना चाहिए । बारात चलने की कहते समय दो व्यक्तियों द्वारा (जिनमें एक घर का बड़ा अवश्य हो) सुपारी भेंट करने की प्रथा ठीक जँचती है।

(२) भोजन यथासम्भव सुरुचिपूर्ण हो । अधिक वस्तुओं की अपेक्षा कम ही चीजें हों किन्तु शुद्ध घी की और स्वच्छता से बनी हों । झूँठन छोड़ने की आदत बहुत ही बुरी है ।

(३) वैदिक विवाहों में बारातियों को बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू आदि हर्गिज नहीं देना चाहिए ।

प्रश्न–इससे तो जो इन चीजों का सेवन करने वाले हैं वे नाराज हो जायेंगे ?

उत्तर–उन्हें नाराज नहीं होना चाहिए। क्या कोई बाराती यदि अण्डा माँस सेवन करता हो तो आप उसकी यह इच्छा भी पूरी करेंगे ? जब इसमें वह नाराज नहीं होते तो उनहें (धूम्र सेवियों को) इसमें भी नाराज नहीं होना चाहिए।

(४) दोपहर का भोजन सब बारातियों को अपने पुरोहित द्वारा बलि-वैश्वदेव यज्ञ कराके करना चाहिए। इस कर्म को बड़ा ही आवश्यक समझना चाहिए। पत्तल बाँधने और खोलने का ढोंग व्यर्थ है।

(५) 'कन्यादान'–के अनेक अर्थ किये जाते हैं। हमारे विचार में दहेज में कन्या को जो सामान (वस्त्र, पात्र तथा नकद आदि दिया जाता है उसी दान का नाम 'कन्यादान' है। और 'कन्यादान' यदि कन्या के अभिभावक देना चाहें तो दिया जा सकता है, यदि वे न देना चाहें तो किसी को हठ नहीं करना चाहिए। इस समय कन्या पक्ष का कोई विशेष व्यक्ति मण्डप से पृथक् कहीं एकान्त में बैठकर जिससे लेना हो 'कन्यादान' लेता और लिखता रहे, मण्डप में यह कार्य नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे बड़ी गड़बड़ मच जाती है और संस्कार जैसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य में किसी का ध्यान ही नहीं रहता।

(६) फेरों के बीच शाखोच्चार का कोई विधान नहीं है, और फेरों के बीच में कन्या पक्ष की लड़कियाँ कुछ कटोरी आदि बारातियों में फेंकती हैं यह बहुत ही बुरा है और व्यर्थ है।

(७) संस्कार समाप्त होने पर वर श्लोक कहें या नहीं ?

उत्तर–व्यर्थ के 'छन-वकैयाँ' आदि न कहकर शिक्षाप्रद श्लोक यथा–**'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'** कहने और समझने की योग्यता वर की हो तो बड़ी अच्छी बात है। अवश्य ही ऐसे श्लोक वर से कहलवायें और भेंट भी प्रेम से दें।

(८) दहेज देने लेने को आप कैसा समझते हैं ?

उत्तर–यह शास्त्रानुकूल है, पर यह यथाशक्ति होना चाहिए। ऋण करके अथवा मान-बड़ाई के लिए दहेज देना-लेना अथवा माँगकर या ठहराकर लेना-देना बड़ा भारी पाप है।

(९) बारात की विदाई के कार्यक्रम की प्रीति सम्मेलन के रूप में आयोजित करें जिसमें परस्पर सद्भावना और कृतज्ञता के प्रकाशन के अतिरिक्त कुछ भजन उपदेश और परमात्मा का धन्यवाद किया जावे। बारातियों को वैदिक साहित्य भेंट करें।

(१०) वर के साथ उसके कुछ साथियों को इकट्ठा बैठा कर भोजन कराने को 'कंवर कलेवा' कहते हैं, ऐसा करने में कोई हानि नहीं है। इससे साथियों का परस्पर प्रेम बढ़ता है।

(११) वर से भट्टी में लात मरवाना तथा उससे महंडे की तनी खुलवाना–ये दोनों व्यर्थ हैं, अतः नहीं करनी चाहिए।

(१२) 'शिर गूंथी' या 'सिर गुन्दी' समधी आदि के थापा लगाना, बखेर करना आदि निरर्थक प्रथायें हैं।

(१३) बहिन का घर का द्वार रोककर खड़ी होने का तात्पर्य यह है कि भाई उसे खुशी और प्रेम की कुछ भेंट देकर भीतर जाए। यह रिवाज ठीक है, इसमें कोई बुराई नहीं है।

(१४) भृत्यों (नौकरों) तथा अन्य कर्मचारियों को उदारतापूर्वक पारिश्रमिक और पुरस्कार देना चाहिए।

भारतीय विवाह का यथार्थ स्वरूप

विवाह के पाँच अंग होते हैं। पहले के दो अंगों में वर-कन्या के अभिभावकों और दूसरे गुरुजनों में बातचीत होती है। वे सब बातों को देखकर सम्बन्ध स्थिर करते हैं। तीसरा अंग कन्यादान है–कन्या का पिता

वर से प्रार्थना करता है कि आप इस कन्या को ले लीजिये और वर इस प्रार्थना को स्वीकार करता है। यही प्रतिग्रह है। परन्तु प्रतिग्रह–कन्या को देने और लेने–का उद्देश्य वह नहीं है जो आज लोक में प्रचलित है। पिता का कन्या पर कोई स्वत्व नहीं है कि लड़की उसके लिये भार हो गई है वह इस बोझ को दूसरे के कन्धों पर फेंकना चाहता है। बात दूसरी ही है। कन्या का पिता वर को अधिकार नहीं, वरन् कर्त्तव्य सौंपना चाहता है। अब तक उसने लड़की का भरण-पोषण किया और उसको ऐसी बौद्धिक और दैहिक शिक्षा दी कि वह समाज में अपने यथोचित स्थान को प्राप्त कर सके। स्थान को प्राप्त करना तभी पूरा होता है जब उस स्थान के उपर्युक्त कर्त्तव्यों का पालन किया जा सके। नहीं तो ऊँचे से ऊँचे स्थान से भी स्खलन होता है। अब वयस्क होने पर लड़की को जिन कर्त्तव्यों का वहन करना है, वे पति के साथ ही उठाये जा सकते हैं। जिस दिन के लिये पिता ने कन्या को पाला था, वह दिन आया। यह उसका सौभाग्य है कि वह उसके लिये योग्य वर, अनुरूप जीवन-संगी ढूंढ़ सका। अब वह उन दोनों को धर्म की दुर्गम घाटी में प्रवेश करने का आह्वान करता है। सचमुच धर्म का पथ 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्या'–छुरे की पतली तीखी धार है। कभी-कभी पारिजात की मधुर गंध भी आ जाती है परन्तु कर्त्तव्य का पालन करना काँटों की सेज पर सोने के समान है। वर-कन्या को अब इस पथ का पथिक बनना है। कन्यादान में उनको इसकी सूचना दी जाती है अब तक का उनका जीवन इसी के लिये तैयार था। कन्यादान दान नहीं समर्पण है। कन्या समर्पित की जाती है परन्तु वर की सेवा के लिए ही नहीं, वर के माध्यम से सनातन, शाश्वत धर्म की सेवा के लिए।

दम्पति का पहला कर्त्तव्य

दम्पत्ति का प्रथम कर्त्तव्य गृहस्थाश्रम को अक्षुण्य रखना है। स्त्री

और पुरुष का रति-सम्बन्ध तो पशु-पक्षियों के ढंग पर भी हो सकता है, परन्तु इस आधार पर समाज नहीं चल सकता है। बड़े पशु-पक्षियों तक मैं कौटुम्बिक जीवन का सरल रूप विद्यमान है, बर्बर मनुष्य भी कुटुम्ब बनाकर रहता है। और जहाँ कुटुम्ब है वहाँ कर्त्तव्यों की श्रृंखला और स्वेच्छाचारिता पर अंकुश है। मनु कहते हैं–

यथा वायुं समाश्रित्य, वर्तन्ते सर्व जन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥
ऋषयः पितरो देवा, भूतान्यतिथयस्तथा।
आशासते कुटुम्बिभ्यः तेभ्यः कार्य विजानता॥

जैसे सब प्राणी वायु के आश्रित होकर जीते हैं, इसी प्रकार सब आश्रम गृहस्थ के आश्रित होकर जीते हैं। ऋषि, पितृ, देव, इतर, प्राणी, अतिथि सब कुटुम्बियों से आशा रखते हैं। ज्ञानी को उनके प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।

स्त्री व पुरुष : परस्पर सहयोगी

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार अयज्ञियों व एषयोऽपत्नी–' पत्नीहीन पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं होता है। रामचन्द्रजी को सीता की स्वर्ण प्रतिमा बैठानी पड़ी थी। यज्ञ में पति-पत्नी दोनों को होना ही चाहिए। दो शरीर परन्तु चित्त एक, संकल्प एक लक्ष्य एक-तब यज्ञ पूरा उतरता है। जहाँ तक यज्ञ-दृष्टि से संसारी कामों के करने की बात है, यह कौन नहीं जानता कि स्त्री ऐसे कामों में अमूल्य सहायता दे सकती है। कान्ता सन्मित्र रूप से प्रेम से भर्त्सना करती, परामर्श देती है, उत्साह बढ़ाती है, चिन्ता बाँट लेती है। स्त्री का जीवन त्याग और तपस्या की कहानी है, वह पुरुष को भी मूक भाषा में यह पाठ पढ़ाती है। इसीलिए स्त्री को सह-धर्मिणी कहते

हैं। न तो पुरुष के बिना स्त्री समीचीन रूप से कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ हो सकती है, न स्त्री के बिना पुरुष।

पितृत्व और मातृत्व अनिवार्य

प्राचीन काल में जब स्नातक विद्या प्राप्त करके गुरुकुल से विदा होने लगता था, तो उसको अन्य बातों के साथ गुरु यह आदेश देता था 'प्रजातन्तु' मा व्यवच्छेत्सी:'-प्रजातन्तु, सन्तानोत्पादन के क्रम को मत काटो, जिस प्रकार तुम्हारे पूर्वज सन्तति छोड़ गये, वैसे तुम भी छोड़ जाओ। पत्नी और सन्तान के बिना पुरुष तथा पति और सन्तान के बिना स्त्री-अकृत्स्न-अपूर्ण हैं। मनुष्य के कई ऐसे गुण हैं जो समाज की व्यवस्था के लिए नितान्त आवश्यक हैं, परन्तु उनका विकास एकाकी नहीं हो सकता, कुटुम्ब के भीतर रहकर ही उनको पनपने का अवसर मिलता है। सबसे अलग रहकर उदारता का अभ्यास नहीं हो सकता। दूसरों के लिये अपने सुखों को छोड़ देना, दुर्बलों की सुश्रूषा करना, अशक्तों को शक्त बनाना, जो कुछ ही बाँटकर भोगना-इसकी शिक्षा गृहस्थ में ही मिलती है। आजकल यह भाव बढ़ रहा है कि विवाह हो, पर सन्तान न हो। यह भाव समाज के लिये घातक होगा। एक और बात है-

पितृत्व-बाप-माँ होना-आकस्मिक घटना नहीं है, वह तो बहुत बड़ा दायित्व है जो इच्छापूर्वक अपने ऊपर लिया जाता है।

स्त्री का कर्त्तव्य

बच्चे के प्रसव से ही दायित्व समाप्त नहीं होता-उसकी ऐसी शिक्षा-दीक्षा करनी है जिससे न केवल यह जन्म प्रत्युत आगे के लिये भी उसका जीवन सुधरे। माता-पिता को यह समझना है कि भगवान् ने हमारा

बहुत बड़ा विश्वास करके हमको यह थाती सौंपी है-हमारा धर्म है कि इसे उन्नत बनाकर तब लौटाएँ।

और फिर स्त्री को इस प्रकार जीवन निर्वाह करना है कि न केवल उसको प्रत्युत् उसके प्रति को परम पुरुषार्थ, जीवन का परम ध्येय मोक्ष प्रापत हो। स्त्री-पति, सन्तति, कुल एवं राष्ट्र को पुनीत करने वाली धर्म की चल प्रतिमा है, पति के लिये इस लोक और परलोक का सम्बल है, उसके चरणों पर देवों के सिर भी झुकते हैं।

इन्हीं कर्त्तव्यों के पालन करने के लिये माता-पिता के चारित्र्य और उपदेशों ने अब उसको इस योग्य बनाया है कि वह उन कृत्यों का बोझ अपने कन्धों पर ले जो पितृगृह में रहकर नहीं उठाये जा सकते। कन्यादान में पिता उसको उस पुरुष से मिलाता है जो उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, जो धर्मपथ पर उसका साथी होगा, जो भार एक से नहीं उठ सकता उसको दोनों मिलकर उठायेंगे। उपनयन के समय वर का दूसरा जन्म हुआ था। उसने सहज-सरल पथ को, उस स्वार्थमूलक पथ को जिस पर पशु भी चल सकता है, छोड़कर धर्ममय, उत्सर्ग मूलक जीवन बिताने का व्रत लिया था। उसी प्रकार कन्यादान कन्या की दीक्षा है। वह भी अब से कँटीले मार्ग की व्रती बनती है।

कन्यादान का यही महत्त्व है। यह बड़े दु:ख की बात है कि समाज ने उसे भुला दिया है। जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने जा रहे हैं उनको इस कदम के उठाने की गुरुता का बोध नहीं कराया जाता और वे बिना यह यह समझे हुए कि कितने बड़े दायित्व का बीड़ा उठाने जा रहे हैं, विवाह को हँसी खेल मान बैठते हैं।

पाणिग्रहण

विवाह की पद्धति कन्यादान पर समाप्त नहीं हो सकती। कन्या के पिता ने वर से प्रार्थना की कि वह कन्या को स्वीकार करे ताकि दोनों

मिलकर गृहस्थ-धर्म को प्रशस्त करें और वर ने अपनी स्वीकृति दे दी। पर इतना ही पर्याप्त नहीं है। जब दो व्यक्तियों को मिलकर कोई काम करना है तो दोनों की स्वीकृति होनी चाहिये। यह सारे जीवन का सौदा है। जब दो प्राणी एक साथ रहेंगे तो दोनों को एक दूसरे पर विचार करना होगा। एक को दूसरे के व्यक्तित्व का आदर करना होगा, दोनों को नियत सीमा के भीतर स्वतन्त्रता मिलनी होगी। स्वेच्छाचारिता बुरी चीज है, परन्तु पराधीनता भी उतनी ही बुरी चीज है- **'सर्वपरवशं दुःखम्'**। जिन शर्तों पर पति-पत्नी को साथ रहना है-दोनों ओर से वचन-प्रतिवचन होते हैं ताकि आगे चलकर स्नेह का धागा टूट न जाये। वर कन्या से कहता है, **ध्रुवं पश्य** ध्रुव को देखो। ध्रुव उनके निश्चल अटल प्रेम का प्रतीक है। कन्या अश्म-पत्थर पर खड़ी होती है। यह पत्थर यह पुकार कर कहता है कि इनका सम्बन्ध पुरातन पहाड़ों के समान दृढ़ और स्थिर रहेगा। कन्या वर के साथ दासी के रूप में नहीं जाती। वह उसके बराबर पद रखती है। उसकी अनुचरी नहीं सहधर्मिणी है, वर-वधू दोनों कहते हैं-

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता, समु देष्ट्री दधातु नौ ॥

-ऋ० १०-८५-४७ ॥

विश्वदेव! हम दोनों के हृदयों को सब विषयों में प्रकाशयुक्त करें। मातरिश्वा, धाता और देष्ट्री (सरस्वती) हम दोनों की बुद्धियों को परस्पर अनुकूल बनायें।

सप्तपदी

अन्त में सप्तपदी आती है। अग्निदेव, जिनकी वैदिक उपाधि ही व्रत-पति है, वर-कन्या के नव स्थापित सम्बन्ध को अपनी मुद्रा से अंकित

करके उनको पति-पत्नी बना देते हैं। हमारा आदेश यह है कि इस सम्बन्ध को मृत्यु भी नहीं तोड़ सकती। **'सखे सप्तपदी भव'** के अनुसार वे दोनों सच्चे सखा हैं।

सारे कृत्य के अन्त में उपस्थित लोगों से प्रार्थना की जाती है कि दम्पति को आशीर्वाद दें-

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

यह वधू सुमंगली-मंगलमयी है, इसको सब लोग साथ देखें और इसको सौभाग्य देकर अपने-अपने घर लौट जायें।

यह है विवाह का वैदिक आदर्श

कहाँ वह उत्तम मेरु-शिखर और कहाँ वर्तमान काल! कितना पतन हुआ है!! हिन्दू समाज के मर्मस्थानों को जैसे विषशलाका भेदन कर गई है, ऊँचे आदर्श तक आँख उठाने की हम में क्षमता नहीं रह गई। पिछले एक हजार वर्षों की राजनैतिक दासता का यह कड़ुआ फल है। यही आश्चर्य की बात है कि कुछ अवशेष रह गये हैं, जिनके सहारे हम फिर प्राचीन युग की खोई बातों का पता लगा सकते हैं।

गीताञ्जलि

आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद !
जिसका यश नित गाते हैं गन्धर्व ऋषि मुनि धन्यवाद !
मन्दिरों में, कन्दरों में, पर्वतों के शिखर पर,
देते हैं लगातार सौ-सौ बार मुनिजन धन्यवाद ! आज०

कूप में, तालाब में, सिन्धू की गहरी धार में,
प्रेम रस में तृप्त हो करते हैं जलचर धन्यवाद ! आज०
करते हैं जंगल में मंगल, पक्षिगण हर शाख पर,
पाते हैं आनन्द मिल गाते हैं स्वर भर धन्यवाद ! आज०
गान कर 'अमीचन्द' भजनानन्द ईश्वर-स्तुति,
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता कान धर-धर धन्यवाद ! आज०

सखी की सीख

पति हो अपनो महादेव, जतनि करि हरे हरे जतन करि पूजोरी
पति ही परम सनेही अपनो पति ही है गुरु-पीर ।
पति ही सखा सँगाती अपनो पति ही है महावीर ।।
इसे ही सींचोरी ।। पति ही ।। १।।
जीवन भर के दुःख सुख का साथी है पति तुम्हारा,
सर्वोपरि धन ये ही बहिना, इष्टदेव निज प्यारा,
नहीं कोऊ दूजोरी ।। पति ही ।।२।।
इष्टदेव सुख दाता पति ही परम मित्र सिरताज,
यही पति सौभाग्य बढ़ावे पति बिन शोक समाज-
जगत् सब झूठोरी ।। पति ही ।।३।।
नाश होंय सब कष्ट उसी के जो पति आज्ञाकारी,
मिलें पदारथ चारों उसको जो दुष्कर हैं प्यारी,
निछावर हूजोरी ।। पति ही ।।४।।

वेश्यागामियों से

ये विदुषी गावें गारी जी तुम सुनो सकल व्यभिचारी ।।
ले मिष्ठान्न जाँय वेश्या-गृह अर्पण करें अगारी ।
घोंटू दिये पेट में बैठी भूखी मरे घरबारी जी ।। ये०१ ।।
रण्डी के घर जाकर करते उसकी ताबेदारी,
निज त्रिया जो सेवा करती देते उसे बिसारी जी ।। ये०२ ।।
पुत्र हाथ रुपया दिलवावें दान समझके भारी,
या तो बहन लगै है उनकी या लागै महतारी जी ।। ये०३ ।।
ब्रह्मचर्य की बान छुटाई है सन्तान दुखारी,
बल बुद्धि विद्या सब खोके बन गये सभी भिखारी जी ।। ये०४ ।।
कहें 'आर्य' प्यारी बहनो तुम सुनलो बात हमारी,
धन्य भाग्य भारत के आ गये दयानन्द ब्रह्मचारी जी ।। ये०५ ।।

बरनी का कर्त्तव्य

उठो बरनी करो सेवा, यही कर्त्तव्य तेरा है ।
बनाओ स्वर्ग घर अपना, यही कर्त्तव्य तेरा है ।।
पहुँचाओ सुख सभी को तुम, न पहुँचे दुःख किसी को भी ।
कभी कटु वाक्य मत कहना, यही कर्त्तव्य तेरा है ।। १ ।।
वो देगी सास भी ताने, वो देगी ननद भी ताने ।
कभी उत्तर मती देना यही कर्त्तव्य तेरा है ।। २ ।।
सभी से मिलकर रहना तुम, नहीं झगड़ा मचाना तुम,
उठाना प्रेम का बीड़ा, यही कर्त्तव्य तेरा है ।। ३ ।।

तेरा कर्त्तव्य ए वरनी, करो चितलाय पति-सेवा ।
पति का जीत लेना मन, यही कर्त्तव्य तेरा है ॥ ४ ॥
यही है वेद की आज्ञा, न मोड़ो धर्म से मुखड़ा ।
बनो आदर्श नारी तुम, यही कर्त्तव्य तेरा है ॥ ५ ॥
किसी को वश में करने का, न कोई मन्त्र टोना है ।
सेवा से जीत लेना मन, यही कर्त्तव्य तेरा है ॥ ६ ॥

सच्चा गहना

गहनों सजधज के बहिन, पहिन लो हरे हरे पहिन लो सब कोई ।
अच्छे गुण ही गहने होवें और न गहने होय ।
सोने चाँदी की चीजों को गहनों कहै न कोय ॥
समझि मन में सोई ॥ गहनो० १ ॥
दिखलाने को ऊपर से जो सुन्दर रूप बनावें,
भीतर अवगुण भरे बहुत से अन्त नरक में जावें-
बुद्धि जिनकी खोई ॥ गहनों० २ ॥
अच्छे गुण सम्पन्न होंय चाहे देखत पड़ें मलीना,
अच्छे ही कामों में जिनका ध्यान रहै रोजीना-
स्वर्ग उनकी होई ॥ गहनों० ३ ॥
सोने चाँदी की चीजों से मोह बड़ी है जिनकूं,
दु:ख समुद्र में गोते खावें, अन्त नरक होय तिनकूं,
जगत् अपयश होई ॥ गहनों० ४ ॥
विद्या पढ़ि अच्छे गुण कौ जो गहिनों पहिन नारी,
प्यारी बहिनो सीताजी सी हों प्रसिद्ध वो भारी-
सुयश जग में होई ॥ गहनों० ५ ॥

तम्बाकू से महान् हानि

भारत गारत भयौ आज, अचम्भो हरे-हरे अचम्भौ सुनि सजनी ।
काहु रोग के लिए तम्बाकू औषधि रची विचारी,
अब तो बिना रोग के घर-घर में पीवत नर नारी ।
कुमति हृदय में ठनी ॥ भारत० १ ॥
सोवत उठत तम्बाकू के वश फक्क ही फक्क उड़ावें,
खाते पीते चलते फिरते धूँआधार मचावें ।
सीरा में मक्खी और चेंटा देखौ खूब सड़ामें,
मिला तम्बाकू में इन सबको अर्क खींच पीजामें ।
नहीं जावे बरनी ॥ भारत० ३ ॥
पीने से बल बुद्धि घटावे रोगी देह बनाई,
कफ खाँसी और आलस आवे नैनन ज्योति घटाई।
कथा में हमने सुनी ॥ भारत० ४ ॥
कोई नशा मति करौरी बहिनों करें पुराणऊ नाहीं,
'अन्तराम' हू मनें करत है रामायण के माँही ॥
पड़ै आफति सहनी ॥ भारत० ५ ॥

बहिनो जागो

भोली मेरी बहिनो, धर्म सब भूल गयीं ।
घर में तो तुम घूँघट काढ़ौ नहीं किसी से बोलौ,
बाजारों में मुखड़ा खोले गीत गवाती डोलौ ॥ भोली० १ ॥
धर्म पतिव्रत भूली दिल से छोड़ी लज्जा सारी,
पर पुरुषों के संग नाचतीं गाली गातीं सारी ॥ भोली० २ ॥

घर में तो अपने पति से तुम नित ही रार मचाओ,
ढोंगी सन्त फकीरों के तुम दर्शन करने जाओ ॥ भोली० ३ ॥
गण्डे और ताबीज कराओ पैसे रोज ठगाओ ।
ईश्वर का विश्वास छोड़के भूत पूजने जाओ ॥ भोली० ४ ॥
'अभय' धर्म नारी का जग में पति की पूजा करना ।
ईश्वर का विश्वास छोड़के इधर उधर मत फिरना ॥ भोली० ५ ॥

पूजा किसकी ?

मैं आर्य जाति की सुता जड़ों को नाँय पूजूँ ।
मैं तो पूजूँगी अपने मात-पिता,
जिन दियौ जनम संसार जड़ों को नाँय पूजूँ ॥ मैं आर्य० ॥
मैं तो पूजूँगी अपने सास-श्वसुर,
जिन सौंपा है घर बार जडों को नाँय पूजूँ ॥ मैं आर्य० ॥
मैं तो पूजूँगी अपने पति परमेश्वर,
जा से जीवन सफल है जाय जड़ों को नाँय पूजूँ ॥ मैं आर्य० ॥

बेटी की विदाई का गीत

कुल की परम्परा मर्याद, निभाये जाना बेटी ।
अब सास-श्वसुर घर जाओ, मत रोओ नीर रुलाओ,
अपने बचपन का संसार भुलाये जाना बेटी ॥ कुल की० १ ॥
सब काम समय पर करना, चीजें जहाँ की तहाँ धरना ।
सबको उत्तम भोजन परसि, जिमाये जाना बेटी ॥ कुल की० २ ॥

जो दें प्रभु सम्पत्ति भारी, तो भूल न जाना प्यारी ।
अपने देश धर्म हित दान, दिलाये जाना बेटी ॥ कुल की० ३ ॥
घर में आ जाय गरीबी, तो धर्म न तजना बीबी ।
टोटे में साहस से काम चलाये जाना बेटी ॥ कुल की० ४ ॥
मत फैशन में फंस जाना मत फूअड़पन दरसाना ।
उत्तम गृहणी का शृंगार, सजाये जाना बेटी ॥ कुल की० ५ ॥
ये शिक्षासार बताया, सुख होगा अगर निभाया ।
सबको कवि 'शीतल' के गीत सुनाये जाना बेटी ॥ कुल की० ६॥

विवाह संस्कार सम्बन्धी सामग्री

(१) समिधा, (२) घृत, (३) शर्करा, (४) शहद, (५) दही, (६) शमीपत्र, (७) धान की खील, (८) शूप, (९) दण्ड (लाठी), (१०) घड़ा, (११) पाषाण शिला, (१२) आम के पत्ते, (१३) आटा, (१४) रंग पाँच, (१५) गिलास चार, (१६) लोटा एक, (१७) थाली दो, (१८) चमचे चार, (१९) धोती जोड़ा, (२०) दुपट्टा, (२१) अंगोछे दो, (२२) कटोरे काँसे के छः, (२३) घृतपात्र एक, (२४) दियासलाई, (२५) आसन आठ, (२६) कपूर, (२७) रुई, (२८) चन्दन की समिधा, (२९) भात, (३०) धूपबत्ती, (३१) हवन सामग्री–ऋतु अनुसार, (३२) दान तथा दक्षिणा के लिए द्रव्य, (३३) वेदी की सज्जा का सामान, (३४) यज्ञोपवीत, (३५) दीपक ।

परिशिष्ट (२)

सामान्य होम विधि

आचमन

विधि (१)–प्रथम शान्त चित्त होकर शुद्ध आसन पर बैठें और निर्मल जल लेकर इन तीन मन्त्रों से तीन बार आचमन करें–

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ इससे पहला ।

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ इससे दूसरा ।

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ तीसरा ।

अंग-स्पर्श

विधि (२)–बायीं हथेली में जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अँगुलियों से अंगों का स्पर्श करें ।

ओ३म् वाङ्म आस्येऽस्तु ॥१॥ इस मन्त्र से मुख ।

ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥२॥ इससे नाक के दोनों छेद ।

ओ३म् अक्ष्णोमर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥ इससे दोनों आँखें ।

ओ३म् कणयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥ इससे दोनों कान ।

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥ इससे दोनों हाथ ।

ओ३म् ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥६॥ इससे दोनों जंघाओं का स्पर्श ।

ओ३म् अरिष्टानि मेऽगांनि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥७॥ इससे समस्त शरीर पर जल छिड़कें ।

अथ ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपसनाः ।

विधि (३)–अब सन्ध्या में बतलाई विधि से सीधे बैठकर एकाग्र-चित्त एवं ध्यान-मंग्न हो नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ एक विद्वान अथवा योग्य

सज्जन अर्थ सहित श्रद्धा और भक्ति के साथ करें । और सब लोग उसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें–

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ।

–यजु० अ० ३० । मं० ३॥

अर्थ–हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिए । जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्राप्त कीजिए ।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

–यजु० अ० १३। मन्त्र ४॥

अर्थ–जो स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतनस्वरूप था, जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था, वह इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिये ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें ।॥२॥

च आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युःकस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

–यजु० अ० २५। मन्त्र १३॥

अर्थ–जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा, जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका

आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा-पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

—यजु० अ० २३ । मन्त्र ३ ॥

अर्थ—जो प्राणवाले और अप्राणिरूप जगत् का अपने अनन्त महिमा से एक ही राजा विराजमान हैं, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके विशेष भक्ति करें ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

— यजु० अ० ३२ । मन्त्र ६ ॥

अर्थ—जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया, जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण किया और जिस ईश्वर ने दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है जो आकाश में सब लोक लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण करता है, हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयोः रयीणाम् ॥६॥

—ऋ० मण्डल १०। सू० १२१। मं० १०

अर्थ—हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मन् ! आपसे भिन्न दूसरा कोई उन इन सब उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को नहीं तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं । जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले होकर हम लोग भक्ति करें आपका आश्रय लेवें और वाञ्छा करें, उसकी कामना हमारी सिद्ध होवे, जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के स्वामी होवें ।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥

— यजु० ३२ । मं० १०॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा अपने लोगों को भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक वह सब कामों को पूर्ण करने हारा, सम्पूर्ण लोकमात्र और नाम, स्थान, जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख-दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होकर विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश हैं । अपने लोग मिलकर सदा उसकी भक्ति किया करें ॥७॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥

— यजु० अ० ४०॥ मं० १६॥

अर्थ—हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करने हारे सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे सम्पूर्ण विद्या युक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलता युक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिए । इस कारण हम लोग

आपकी बहुत प्रकार की स्तुति रूप नम्रता पूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥८॥

अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥१॥
—ऋ० म० १। सू० १। मन्त्र १।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥
—ऋ० मं० १। सू० १। मन्त्र ६।

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्तिद्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पति सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥
विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥
स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥
स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥७॥
—ऋ० मण्डल ५ सू० ५१। मन्त्र ११ से १५ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥
—ऋ० म० ७। सू० ३५। म० १५ ।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयःपीयूषं द्यौरदितिरद्रि बर्हाः ।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥९॥
नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणंवसते वस्तये ॥१०॥
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञ माययुर परिह्वृता दधिरे दिविक्षयम् ।
तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिंस्वस्तये ॥११॥
को वःस्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥
येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥
भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा पृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥१६॥
विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वंनोदुरेवायाअभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥
अपामावामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥
अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यवाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥
स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रक्णस्वस्त्यभि या वाममेति ।
स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रक्णस्वस्त्यभि या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः॥

—ऋ० मण्डल १०। सूक्त ६३। मन्त्र ३-१५

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणआप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशं सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरी तास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवाना रातिरभि नो निवर्तताम् ।
देवानां सख्य मुपसे दिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

—यजु० अ० २५। मन्त्र १४, १५, १८, १९, २१।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥२६॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥

साम० छन्द आ प्रपा० १। मन्त्र १-२

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥

अथर्व० का० १। सूत्र १। मन्त्र १।

शान्ति करणम्

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्नइन्द्रा पूषणा वाजसातौ ॥
शं नो भगःशमु नःशंसो अस्तु शंनः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शंनो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥
शंनो धाता शमुधर्तानो अस्तु शंन उरूची भवतु स्वधामिः ।
शं रोदसी बृहती शंनो अद्रिः शंनो देवानां सुहवानि सन्तु ॥
शंनो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शंनो मित्रावरुणावश्विनाशम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शंन इषिरो अभिवातुवातः ॥
शंनो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शंन ओषधीर्वनिनो भवन्तु शंनो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥
शंन इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शंनो रुद्रो रुद्रे भिर्जलाषः शंनस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥
शन्नः सोमो भवतु ब्रह्म शंनः शंनो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शंनः त्वरूणां मितयो भवन्तु शंनः प्रस्वः शम्वस्तुवेदिः ॥
शंनः सूर्य उरुचक्षाउदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शंनः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शंनः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥
शंनो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शंनो भवन्तु मरुतः स्वर्क्काः ।
शंनो विष्णुः शमुपूषा नो अस्तु शंनो भवित्रं सम्वस्तुवायुः ॥
शंनो देवः सविता त्रायमाणः शंनो भवन्तूषसो विभातीः ।
शंनः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शंनः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ।

शंनो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शंनो दिव्याः पार्थिवाः शंनो अप्याः ॥
शंनः सत्यस्य पतयो भवन्तु शंनो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शंनः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शंनो भवन्तु पितरौ हवेषु ॥
शंनो अज एकपाद् देवो अस्तु शंनोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शंनो अपां नपात्पेरुरस्तु शंनः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥
ऋ० मं० ७। सूक्त ३५। मन्त्र १ से १३

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तुद्विपदे शं चतुष्पदे ।।१४।।
शं नो वातः पवतां शंनस्तपतु सूर्यः ।
शंनः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ।।
अहानि शंभवन्तु नःशं रात्रीः प्रति धीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।।
शं न इन्द्रावृषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्त्रवन्तु नः द्यौः शान्तिरन्तरिक्षम् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति रोषध यः शान्तिः । वनस्पतयः शान्ति विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि । तच्चक्षुर्दे वहितं पुरस्ताच्छुक्रमुश्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।।१६।।
—यजु० अ० ३६। मन्त्र ८।१०।११।१२।१७।२४

•यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंल्कपमस्तु ।।२०।।

१. यही छः मन्त्र रात्रि को सोते समय की प्रार्थना के हैं ।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्व यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ।।२१।।
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्मक्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।२३।।
यस्मिन्नृचः साम यजूं षि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजाना तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुर्भिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।२५।।
—यजु० अ० ३४। मन्त्र १ से ६ ।।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ।
सा० उत्तराचिंक । प्रपा० १। मन्त्र १ ।
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।।२७।।
अभयं मित्रादभयमित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।
अथर्व का० १६। सू० १५। मन्त्र ५-६।।

इति शान्तिकरणम्

अग्न्याधान

विधि (४)—तत्पश्चात्• हवन कुण्ड अथवा वेदी में समिधायें

१. आचमन, अंगस्पर्श एवं स्तुति प्रार्थनोपासना के पश्चात् और विशेष यज्ञों में इनके साथ ही स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण के पश्चात् ।

रखें। तीन समिधायें पहले से बचाकर अलग रखें पुनः निम्नलिखित मन्त्र द्वारा घृत के दीपक या दियासलाई से कपूर जलायें ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।

गोभि० प्र० १ का० १ सू० ११

विधि (५)–फिर उस जलते हुए कपूर को स्रुवे में रखकर नीचे लिखे मन्त्र से कुण्ड में रखी हुई समिधाओं के मध्य में छोड़ दें ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।

–यजु० ३।५।।

विधि (६)–निम्न मन्त्र से कुण्ड में छोटी-छोटी समिधायें रखकर आग को संवारें । आवश्यक हो तो पंखा से आग प्रदीप्त करें ।

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि स्वमिष्टापूर्तेसꣳसृजेथा मयं च अस्मित्संधस्थे अध्युतरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥

यजु० अ० १५। मन्त्र ५४ ।।

समिदाधान

विधि (७) : जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब तीन समिधायें जो पहले से ही बचाकर रखली गई हैं, घी में भिगोकर अग्नि में चढ़ायें । इस मन्त्र से पहली समिधा चढ़ावें–

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्ते नेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥ आश्व० १।१०।१२

इन दो मन्त्रों से दूसरी सुमिधा चढ़ावें–

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैबोर्धयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥

ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ।।३।।

इस निम्नलिखित मन्त्र से तीसरी सुमिधा चढ़ावें–

ओ३म् तं त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्धयामसि । वृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽगिंरसे-इदन्न मम ।।४।।

–यजु० अ० ३। मन्त्र १।२।३।

पञ्च-घृताहुति

विधि (८)–इस मन्त्र से पाँच बार घी की आहुति देवें–

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥

जलाञ्जलि

विधि (९)–तत्पश्चात् अंजलि में जल लेकर निम्नलिखित मन्त्रों से वेदी या कुण्ड के चारों ओर छिड़कें–

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व । इससे वेदी या कुण्ड के पूर्व भाग में।

ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व । इससे पश्चिम में ।

ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व । इससे उत्तर में ।

–गोभिल० गृ० अ० प्र० १। खं० ३ सू० १ से ३।।

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु । (इससे

वेदी के चारों ओर) –यजु० अ० ३०। मन्त्र १। गो० १।१ ॥

आघारावाज्याहुति

विधि (१०) फिर निम्नलिखित मन्त्रों से घृत की दो आहुतियाँ कुण्ड के भीतर प्रज्वलित अग्नि पर देवें।

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम।

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम।

आज्यभागाहुति

विधि (११)–निम्न दोनों मंत्रों से यज्ञ-कुण्ड के मध्य में घी की आहुति देवें–

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये–इदन्न मम।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय – इदन्न मम॥

विधि (१२)–पुनः प्रातःकाल को प्रातःकाल के तथा सायं काल को सायंकाल के मन्त्रों से घृत और सामग्री की आहुति दें।

प्रातःकाल की आहुतियाँ

ओ३म् सूर्यो ज्योतिज्योतिः सूर्यः स्वाहा। य० अ० ३। मं० ९॥

ओ३म् सूर्यो वचो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। य० अ० ३। मं० ९॥

ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा। य० अ० ३। मं०९॥

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजुरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥

य० अ० ३। मं० १०॥

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम।

ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा॥ इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम॥२॥

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम॥३॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम॥

पार० का० १५ सू० ३–४॥

ओ३म् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥

विधि (१३)–तदनन्तर निम्नलिखित तीन मन्त्रों से आहुति दें–

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥१॥ यजु० अ० ३२ मन्त्र १४॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दु रितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव स्वाहा॥२॥ य० अ० ३०। मन्त्र ३॥

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा॥३॥ यजु० अ० ४०। मन्त्र १६।

सायंकाल की आहुतियाँ

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। य० अ० ३। मन्त्र ९॥

ओ३म् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। य० अ० ३। मन्त्र ९॥

इस तीसरे मन्त्र को मन में पढ़कर आहुति देवें–

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। य० अ० ३। मन्त्र ९॥

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्र वत्याजुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा। य० अ० ३। मन्त्र १०॥

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ॥[1]
ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम॥
ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।
इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम ।
ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्यादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वा दित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः इदन्न मम॥

पार० का० १-५ सू० ३-४

ओ३म् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥
ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥

विधि (१४)—तत्पश्चात् तीन बार गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ देकर निम्न मन्त्र से तीन आहुतियाँ दें ।

सर्वं वै पूर्णं स्वाहा । (दैनिक यज्ञ विधि समाप्त)

विशेष यज्ञों में

पूर्णाहुति प्रकरण

विधि (१५) विधि १३ के पश्चात् ये दस आहुतियाँ देवें ।

---

१. प्रातःसायं दोनों समय दैनिक यज्ञ करने वालों के लिये भी यही क्रम ठीक है। पर जो दैनिक यज्ञ एक ही समय (प्रातःकाल) ही करते हैं, वे सायंकाल की आहुतियाँ देते समय (१) इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम (२) 'इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम' (३) इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम' (४) इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम' का उपयोग नहीं करें । साथ ही 'यां मेधां० से लेकर 'अग्ने नय सुपथा.' इन तीनों मन्त्रों का पाठ नहीं करें (सार्वदेशिक धर्मार्य सभा द्वारा प्रकाशित यज्ञ पद्धति के अनुसार ।)

आघारावाज्यभागाहुति (चार)

ओ३म् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ इससे उत्तर में
ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम ॥ इससे दक्षिण में
ओ३म् प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥
इससे उत्तर में
ओ३म् इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय मम ॥ इससे मध्य में

व्याहृत्याहुतियाँ (चार)

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये–इदन्न मम ॥१॥
ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ॥२॥
ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय-इदन्न मम ॥३॥
ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न-मम ॥४॥

स्विष्टकृत् होमाहुति

इस मन्त्र से घी अथवा भात की आहुति देवें

ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टद् स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वंस्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ॥

प्राजापत्याहुति एक

(इस मन्त्र को मन में पढ़कर आहुति दें)

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतय इदन्न मम ॥

विधि (१६)–पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से आज्याहुति दें ।

आज्याहुति

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्य दुच्छुनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम॥१॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय । इदन्न मम ॥२॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे सर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय । इदन्न मम ॥३॥

ऋ० ६।६६।१६-२१

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥

अष्टाज्याहुति

विधि (१७)–इसके अनन्तर समस्त मंगल कार्यों में निम्नलिखित आठ मन्त्रों से 'अष्टाज्याहुति' देनी चाहिये ।

ओ३म् त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग नीवरुणाभ्याम् इदनमम ॥१॥

ओ३म् स त्वं अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्याम्-इदन्न मम ॥२॥

ओ३म् इमं मे वरुण श्रु धी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥३॥

ओ३म् तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय–इदन्न मम ॥४॥

ओ३म् ये ते शतं वरुण ये सहस्त्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्क्केभ्यः इदन्न मम ॥५॥

ओ३म् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजं स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे–इदन्न मम ॥६॥

कात्या० २५। १।११॥

ओ३म् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यादितये च–इदन्न मम ॥

(ऋ० १।२४।१५)

ओ३म् भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञं हिं सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्याम् ॥ इदन्न मम

।८। य० ।५।३

विधि (१८)–पश्चात् सम्बन्धित पर्व या संस्कार पर विशेष मन्त्रों से आहुतियाँ दें । प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में 'ओ३म्' और अन्त में 'ओ३म् स्वाहा' जोड़कर आहुति दें ।

'स्वाहा' का उच्चारण सभी उपस्थित जन उच्च स्वर से करें ।

विधि (१९)–तदनन्तर कम से कम तीन आहुतियाँ गायत्री मन्त्र से अथवा 'ओम् विश्वानि' इस प्रार्थना-मन्त्र से दें ।

विधि (२०)–फिर निम्नलिखित मन्त्र से तीन आहुतियाँ (एक बार में एक-एक आहुति दें)

ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।

(इति सामान्य होम विधिः)

स्व० आचार्य प्रेमभिक्षु जी

(कवित्त)

त्याग, तप की ही साधना को अपनाया सदा, श्रम जल सींच बेल वैदिक बढ़ाई थी।
प्रबल विरोधियों के बोये कंटकों के बीच, ईश्वरीय प्रसाद 'प्रेम' वाटिका लगाई थी।
प्रेम भिक्षु बनके 'स्वदेश' हित साधन को, सत्य के प्रकाशन की योजना चलाई थी।
पाप, ताप, वारिध से भारत उबारन को, 'तपोभूमि' गुरुकुल में चेतना जगाई थी।

अरे ! आज जो कुछ भी हमको यहाँ दिखाई देता कार्य।
त्याग और तप [illegible] तुम्हारा ही आचार्य।